मरूमेघ

किसान ई पत्रिका

त्रैमासिक पत्रिका वर्ष – 2, अंक – 1

(जनवरी – माार्च), 2017

ISSN 2456-2904

www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध

© marumegh 2017

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	आलेख	पृष्ठ संख्या
1.	**किसानों के लिए मृदा और जल परीक्षण लाभकारी** भैरू सिंह, अक्षय घिंटाला व डॉ. नवीन सैनी तथा अमित कुमार	1-2
2.	**दलहनी फसलों के प्रमुख सूत्रकृमि तथा उनका प्रबन्धन** चन्द्र प्रकाश नामा, डॉ. बी. एल. बाहेती एवं डॉ. बी. एस. राठौड़	3-5
3.	**कार्बनिक खाद : वर्मीकम्पोस्ट** मुकेश कुमार. नरेश कुमार और महावीर	6-7
4.	**कीटनाशकों का सुरक्षित इस्तेमाल** दीपिका शर्मा एवं सुरेश चन्द यादव	8-9
5.	**ग्लेडियोलस की व्यावसायिक खेती** रवि कुमार मीणा, झूमर लाल एवं चन्द्र प्रकाश नामा	10-12
6.	**विलुप्तप्रायः औषधीय पौधे 'गुग्गल' की खेती** रजनी वर्मा, एम. एल. जाखड़, रमेश कुमार एवं रवि कुमार	13-15
7.	**तरल जैव उर्वरकों का कृषि में महत्व** ओम प्रकाश प्रजापत सुरेश चन्द यादव	16-17
8.	**स्टीविया उत्पादन की उन्नत जैविक कृषि तकनीक** डॉ. आर. बी. दुबे, मीनाक्षी धूत एवं डॉ. कपिलदेव आमेटा	18-21
9.	**जैविक खेती में जैव उर्वरकों का महत्व** अर्जुन लाल ओला, सुरेश चन्द यादव, भागचन्द ओला एवं राजेन्द्र ओला	22-24
10.	**एलोवेरा की वैज्ञानिक खेती** सुरेश चन्द यादव, दीपिका शर्मा ,व ओम प्रकाश प्रजापत	25-26
11.	**जैव उर्वरक एवं प्रयोग विधियाँ** जितेन्द्र कुमार शर्मा, चेतन कुमार जांगिड, सोमेन्द्र मीणा, देवकी नन्द शर्मा और अशोक कुमार मालव	27-30
12.	**लौकी की उत्पादन तकनीक** अक्षय चित्तौड़ा, सुरेश कुमार तेली और डॉ. वीरेन्द्र सिंह	31-34

13.	**गुलाब के प्रसंस्कृत उत्पाद बनाकर कमायें अधिक लाभ** अर्जुन लाल रेगर एंव जया कुमारी	35-36
14.	**मक्का की उन्नत किस्मो की खेती** सिद्धार्थ कुमार पाटीदार एवं डा. बिनीता देवी	37-39
15.	**कैसे हो बीज सुरक्षित** राजकुमार फगोडिया, बाबूलाल फगोडिया एवं रामचन्द्र चौधरी	40-41
16.	**टिन्डा की खेती केसे करे** डॉ बी. एल. जाखड़ एव पीयुस सरस	42-44
17.	**रबी की मुख्य फसलों में रोग फेलने के मुख्य स्रोत एवं नियंत्रण के प्रमुख उपाय** बाबूलाल फगोडिया, राम चन्द्र चौधरी एवं आर. एस. चौधरी	45-47
18.	**गेहूँ की उत्पादकता में सुधार** सुनिता कुमारी, बसन्त कुमार भींच्छर	48-50
19.	**गन्ना की खेती– अर्थात् अधिक रोजगार का सृजन** संजय पठाडे[1], डॉ. बिनीता देवी एवं डॉ. शिशिर कुमार सिंह	51-52

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

किसानों के लिए मृदा और जल परीक्षण लाभकारी

भैरू सिंह[1], अक्षय घिंटाला[1] व डॉ. नवीन सैनी[1] तथा अमित कुमार[2]
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, नोहर, [2]विद्यावाचस्पति शोधार्थी, राजस्थान कृषि महाविद्यालय
महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर 313001 (राजस्थान)

मृदा से अच्छा फसलोत्पादन लेने एवं उसकी उर्वरा शक्ति को लम्बे समय तक बनाये रखने के लिए 16–21 पोषक तत्वों की सन्तुलित मात्रा में आवश्यकता होती हैं, इसलिए मृदा वैज्ञानिक मृदा एवं सिंचाई जल का परीक्षण कर मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा एवं मृदा के स्वास्थ्य की जांच करता है। सिंचाई जल परीक्षण से उसकी गुणवता के बारे में जानकारी मिलती है। किसान भाईयों को मृदा एवं सिंचाई जल परीक्षण से उसकी गुणवता के बारे में जानकारी देता है तथा किसान भाईयों को जांच परिणामों के अनुरूप जीवाणु खाद, हरी खाद एवं उर्वरक उपयोग के लिए सिफारिश की जाती है। बीमार मृदा (लवणीय, क्षारीय व अम्लीय मृदा) को पुनः लाभकारी फसलोत्पादन लेने लायक बनाने हेतु जिप्सम, फास्फोरस, जिप्सम पाईराट, चूना इत्यादि के प्रयोग की सिफारिश की जाती है।

मिट्टी परीक्षण कब करायें:

किसान भाईयों को प्रत्येक खरीफ, रबी एवं जायद मौसम में फसलों की बुवाई से पूर्व मृदा की जांच करावें। इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखें कि अलग–अलग फसलों एवं अलग–अलग खेतों से अलग–अलग नमूना एकत्रित करें।

मृदा नमूना लेने कि विभिन्न विधियां:

(अ) पोषक तत्व प्रबन्धन हेतु मिट्टी एकत्रित करना:

- खेत के ढलान, मिटटी का प्रकार, फसल को बढवार ओर जल निकासी इत्यादि के आधार पर खेत को विभिन्न भागों में बांट ले
- हर भाग का अलग–अलग एक मिलाजुला नमूना लें। एक हैक्टेयर क्षेत्रफल वाले खेत से 15–20 जगह से नमूने लेकर एक मिला जुला नमूना बनायें।
- नमूना लेने की जगह से पहले भूमि पर पड़े घास–फूस को साफ कर लें। एक बात का विशेष ध्यान रखें की खेत में उपरी सतह की मिटटी को न हटायें।
- मिटटी का नमूना 6 ईंच की गहराई तक लें।
- एक तिकोना वी आकार का 6 ईंच की गहराई तक का गडढा बनाकर उपरी सतह से खुरपी द्वारा आधा ईंच मोटी मिट्टी को समान परत उपर से नीचे तक निकालें।
- नमूने में यदि ढेले हो तो उन्हें तोडे तथा मिटटी की समान परत उपर से नीचे तक निकालें।
- इस प्रकार एक खेत में विभिन्न जगहों से एकत्रित की गई मिटटी को साफ कागज, प्लास्टिक, बडे पत्थर अथवा सीमेन्ट की फर्ष पर रखकर हाथ से अच्छी तरह मिला लें।
- मिटटी के ढेर को चार बराबर भागों में बांट देवें तथा आमने सामने के दो भागों को फेंक देवें। षेश बचे दो भागों को पुनः आपस में अच्छी तरह मिला लेवें।
- पुनः षेश बची मिटटी को पहले की तरह चार भागों में बांटे इस प्रक्रिया को तब तक दोहरायें जब तक की आधा किलो नमूना षेश न बच जाये।
- प्रयोगशाला में जांच हेतु लगभग आधा किलो मिटटी के नमूने की आवष्यकता होती है। इस नमूने को साफ प्लास्टिक या कपड़े की थेली में भरकर नीचे लिखी सूचनाओं को साफ सुन्दर अक्षरों में लिखकर प्रयोगषाला

में भेजा जाये, जैसेः– कृषक का पूरा नाम मय पिता गांव व तहसील पूर्व में बोई गयी फसल का नाम व आगे बोई जाने वाली फसल का नाम एवं सिंचित/असिंचित आदि सूचनाएं।

जाँच हेतु मिटटी नमूना एकत्रित करते समय ध्यान देने योग्य बातेंः

पेड़ व झाड़ियो के आसपास से, सिंचाई की नालियों, कुँए अथवा मेड़ों के आसपास से, खाद की ढेरी के आसपास से, एवं उस क्षेत्र से जहां कुछ समय पूर्व उर्वरक डाले गये हो अथवा खाद की ढेरी पड़ी हो, उसके पास से दलदल वाली जगह से नीचले क्षेत्र व पुराने बांध से मिट्टी नमूना न लेवें।

(ब) ऊसर भूमि से नमूना एकत्रित करने की विधिः

- ऊसर भूमि हेतु 100 से.मी. तक गहराई का नमूना लेना पड़ता है।
- 120 से.मी. तक खडडा कर एक तरफ की दीवार को सीधा कर लें 15, 30 और 60 से.मी. तक निशान लगा लेवें।
- सीधी दीवार से 15 से.मी. तक कसी अथवा खुरपी से नमूना इकट्ठा करें।
- 0–15 से.मी., 15–30 से.मी., 30–60 से.मी. एवं 60–100 से.मी. तक का आधा–आधा किलो नमूना अलग–अलग साफ कपड़े अथवा प्लास्टिक की थेली में भरें।
- हर एक नमूने के साथ नीचे लिखी सूचनाओं को साफ सुन्दर अक्षरों में लिखकर प्रयोगशाला में भेजा जावें जैसेः– कृषक का पूरा नाम मय पिता गांव व तहसील का नाम, खेत की पहचान/खसरा न., सिंचित/असिंचित नमूने की गहराई (से.मी.), ऊसर बनने का कारण यदि आप जानते हों तो पूर्व में बोई गयी फसल का नाम बाद में बोई जाने वाली फसल का नाम, भूमि सुधार हेतु कोई उपाय किया हो तो उसका उल्लेख करें। इसके अलावा उपरी सतह का नमूना उर्वरकों की सिफारिस के लिए नमूना पोषक तत्व प्रबन्धन हेतु बताये गये अनुसार ही लेवें।

(स) बगीचा लगाने हेतु मिटटी का नमूना लेने की विधिः

फल वृक्षों की वृद्धि के लिये मृदा का पोषण स्तर एवं परिस्थितियां महत्वपूर्ण है।

- उसर भूमि से जिस प्रकार नमूना लेते हैं ठीक उसी प्रकार से लिया जाता है लेकिन बाग लगाने वाले खेत से दो मीटर गहराई तक का नमूना लेना पड़ता है।
- निम्नलिखित सतहों से अलग–अलग नमूना लेवें जैसे उपरी सतह से 30 सेमी., तक 30–60 सेमी., तक 60–100 सेमी., तक 100–150 सेमी., तक एवं 150–200 सेमी.।
- कठोर सतह या कंकरीली सतह से उसकी गहराई एवं मोटाई नोट कर लेवें और उसका नमूना लेवें।
- प्रत्येक नमूने को अलग–अलग साफ कपड़े या प्लास्टिक की थेली में भरें। प्रत्येक गहराई से लगभग आधा किलो नमूना एकत्रित करें। कागज की पर्ची पर निम्नलिखित सूचनाएं लिखें जैसे कृषक का नाम मय पिता, गांव/तहसील का नाम, खेत की पहचान, खसरा न. भूमि जल स्तर एवं औसत वर्षा।

सिंचाई हेतु पानी की जांच का नमूना लेने की विधिः

पानी यदि तालाब, कुओं या नहर से लिया जाये तो साफ पानी लगभग आधा लिटर एक साफ बोतल में लेकर उस पर नाम व पता चिपका कर प्रयोगशाला में भेजें। टयूवबेल से नमूना लेने से पूर्व 15 मिन्ट तक चलाने के बाद ही नमूना लेवें।

मृदा एवं पानी परीक्षण कहां पर करायेंः

केन्द्र सरकार द्वारा प्रत्येक जिलास्तर पर कृषि विज्ञान केन्द्रो में मृदा एवं जल परीक्षण की सुविधा अत्यन्त रियायती दरों पर किसानों हेतु उपल्बध है। इसके अलावा राज्य कृषि विश्वविद्यालयों एवं कृषि विभाग की प्रयोगशाला पर भी किसान भाई अपनी मृदा एवं जल की जांच करवाकर मृदा स्वास्थय कार्ड बनवा सकते हैं।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

दलहनी फसलों के प्रमुख सूत्रकृमि तथा उनका प्रबन्धन

चन्द्र प्रकाश नामा, डॉ. बी. एल. बाहेती एवं डॉ. बी. एस. राठौड़
सूत्रकृमि विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय,
म. प्र. कृ. प्रौ. वि., उदयपुर

पूरे विश्व में दलहनी फसलों का फसल प्रणाली में अहम स्थान है तथा भारत दलहन उत्पादन में विश्व में अग्रणी कतार में है । पूरे भारत वर्ष में फसलों में दलहन का अग्रणी स्थान है, क्योंकि इनका फसल चक्र में होना आवश्यक है तथा मानव आहार में भी महत्वपूर्ण स्थान है। दालें अनाज आधारित भोजन का पूरक व अच्छा स्त्रोत है जो 17–43 प्रतिशत वानस्पतिक प्रोटीन की जरुरत को पूरा करती है। दलहनी फसले भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, जिससे उच्च उत्पादन प्राप्त होता है। इसके अलावा दलहनी फसले राइजोबियम की गांठो के द्वारा वायुमंडलीय नाइट्रोजन को भूमि में स्थिर करने में तथा मृदा की उर्वरता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । दुर्भाग्य से दलहनी फसलो के कई बाधाएं है जिनमे कीट व रोग सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। विभिन्न नाशीजीवों में पादप रोगकारक सूत्रकृमि दालो के उत्पादन में मुख्य बाधा है, ये सूत्रकृमि पौधे की जड़ो तथा आस–पास के क्षेत्र में पाये जाते है तथा दालो के उत्पादन में कमी उत्पन करते है एक मोटे अनुमान के मुताबिक सूत्रकृमि दलहनी फसलो में 50–80 प्रतिशत तक नुकसान पहुँचाते है

दलहनी फसलो लगने वाले प्रमुख सूत्रकृमि:–

1. **जड़ गांठ सूत्रकृमि:–** यह जड़ो में लगने वाला एक प्रमुख सूत्रकृमि है जो कि पूरे भारतवर्ष में पाया जाता है। यह सूत्रकृमि दलहनी फसलो में 14–80% तक का नुकसान पहुचता है।

लक्षण :–

- रोगग्रस्त पौधों की वृद्धि का रुकना, पौधे का मुरझाना, पुष्पन तथा फलन में विलम्ब आदि अनेक लक्षण पौधे के वायवीय भाग में दिखाई देते है।
- पौधे की जड़ो में गांठो का बनना इस सूत्रकृमि का प्रमुख लक्षण है । इन गांठो को जड़ो से अलग नही किया जा सकता है। जबकि राइजोबियम जीवाणु द्वारा निर्मित गांठो को आसानी से जड़ो से अलग किया जा सकता है । इस प्रकार से राइजोबियम जीवाणु द्वारा निर्मित गांठो तथा सूत्रकृमि द्वारा निर्मित गांठो की आसानी से पहचान की जा सकती है।

सूत्रकृमि द्वारा निर्मित गांठे

राइजोबियम जीवाणु द्वारा निर्मित गांठे

2. **गुर्दाकार सूत्रकृमि:–** भारतवर्ष में इसकी 9 प्रजातियाँ पायी जाती है, इनमे से केवल एक जाति रोटाइलेनकुलुस रेनिफॉर्मिस अधिक महत्वपूर्ण है। जो देश के विभिन्न क्षेत्रो में प्रमुख रूप से दलहनी फसलो पर परजीवी के रूप में रहकर काफी हानि पहुचाती है। दलहनी फसलो जैसे अरहर, मूंग, उडद, चवला, मटर, चना, सोयबीन आदि में यह 15–40% तक की क्षति पहुँचाता है।

लक्षण :–

- यह सूत्रकृमि पौधे की जड़ो की उग्र काट–छाट कर देता है। जिसके फलस्वरूप पौधों का विकास रुक जाता है तथा वह बौने रह जाते है।
- ग्रसित पौधे की पत्तिया जड़ने लगती है तथा पुष्पन शीघ्र होता है।
- दलहनी फसलो के बीजो का विकास नही हो पाता है।
- सूत्रकृमि ग्रसित जड़े बदरंग हो जाती है तथा सूत्रकृमि के सिर के आस–पास जड़ का रंग गहरा हो जाता है।

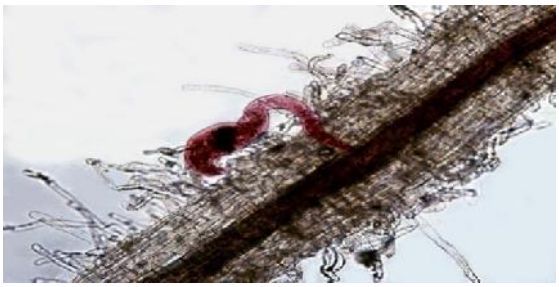

गर्दाकार सत्रकमि

सत्रकमि ग्रसित बदरंग जडे

सूत्रकृमि प्रबंधन:–

- **गर्मी की गहरी जुताई** – मूंग, उडद व चवले की फसल में जड़गांठ सूत्रकृमि तथा गुर्दाकार सूत्रकृमि के प्रबंधन हेतु मई–जून के महीने में खेतो की 2–3 गहरी जुताई करनी चाहिए। इससे सूत्रकृमि के अंडे तथा द्वितीय अवस्था के डिंबक तेज धुप से नष्ट हो जाते है।
- **फसक चक्र**– रोगरोधी फसलो के साथ 2–3 साल का फसल चक्र अपनाना चाहिए। ज्वार, मक्का, रिजका, जई आदि फसलो को फसल चक्र में रखना चाहिए । ये फैसले इन सूत्रकृमियों के लिए अभोज्य फसले होती है।
- **मृदा का कार्बनिक संशोधन:**– कार्बनिक मृदा सुधारको के प्रयोग द्वारा भी इनकी रोकथाम की जा सकती है। अनेक अखाद्य खलियों जैसे– नीम, करंज, रतनजोत, महुआ तथा अरण्डी आदि को 5 क्विंटल प्रति हैक्टर की दर से खेत में डालने से सूत्रकृमियों की व्यापकता कम हो जाती है।
- **दुश्मन फसले:**– कुछ फसलो जैसे– गेंदा, सरसों इत्यादि की जड़ो से कुछ रासायनिक द्रव्य निकलते है जो की सूत्रकृमियों को भगाने का कार्य करते है। अतः इन फसलो का उपयोग अंतराशस्य के रूप में किया जा सकता है।
- **जैविक उपचार:**–
  - ✓ सूत्रकृमियों के नियंत्रण के लिए दलहनी फसलो के बीजो को ट्राइकोडर्मा विरिडी या ट्राइकोडर्मा हारजीऐनम या पैसिलोमयसेस लिलासीनस नामक जैव रसायन का 10 ग्राम प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करके बोना चाहिए।
  - ✓ 2.5 किलोग्राम ट्राइकोडर्मा विरिडी को गोबर की खाद में मिलाकर खेत में डालने से सूत्रकृमियों की रोकथाम की जा सकती है।
- **रासायनिक उपचार:**–
  - ✓ बीजो को 3% कार्बोसल्फान 25 डी. एस. नामक दवाई से उपचारित करके बुवाई करनी चाहिए।
  - ✓ सूत्रकृमि रोग की अधिकता की अवस्था में बुवाई के समय फोरेट कण 20 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।
- **समन्वित प्रबंधन:**–
  - ✓ ट्राइकोडर्मा हारजीऐनम नामक जैव नियंत्रक 10 किलोग्राम प्रति हैक्टर का कार्बोसल्फान 15% के साथ बीजोपचार में प्रयोग करे।
  - ✓ नीम की खली एक क्विंटल प्रति हैक्टर में 2.5 किलोग्राम ट्राइकोडर्मा विरिडी को मिलाकर प्रयोग करे।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

कार्बनिक खाद : वर्मीकम्पोस्ट

मुकेश कुमार, नरेश कुमार* और महावीर***

कृषि महाविद्यालय, बीकानेर

**विद्यावाचस्पति छात्र, *स्नातकोत्तर छात्र

रासायनिक उर्वरकों के लगातार अन्धाधुन्ध एवं असंतुलित प्रयोग करते रहने से मृदा की भौतिक दशा खराब होती जा रही है तथा उसकी उत्पादकता में दिन प्रतिदिन कमी आती जा रही है। साथ ही ऐसी भूमि से प्राप्त अन्न, फल एवं सब्जियों में भी पौषक तत्वों की गुणवत्ता में अपेक्षाकृत कमी होती जा रही है। अर्थात रासायनिक खादों से पेदा होने वाले अन्न, फल व सब्जियाँ स्वादहीन व जहर युक्त आने लगी है। अतः अब जरूरत है कि हम रासायनिक उर्वरकों के बजाय कार्बनिक खादों (जैविक खाद) का प्रयोग करें। कार्बनिक खादों (जैंविक खाद) में से एक वर्मीकम्पोस्ट है वर्मीकम्पोस्ट में लगभग 2.5–3.0 प्रतिशत नत्रजन, 1.0–1.5 प्रतिशत फॉस्फोरस तथा 1.5 –1.8 प्रतिशत पोटाश होता है।

वर्मीकम्पोस्ट : वर्मीकम्पोस्ट के बनाने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका होती है केंचुओं की। सामान्यतः केंचुओं को वर्म्स तथा उनसे पैदा होने वाले समूहों व कोकून को वर्मीकल्चर कहते हैं इन्हीं केंचुओं की विष्टा को वर्मीकम्पोस्ट या वर्मी कास्टिंग कहा जाता है। इस प्रकार सुव्यवस्थित रूप से सड़ी हुई पत्तियों और वेस्ट मेटेरियल में गोबर की खाद के माध्यम से पचाकर निर्मित की गई प्रक्रिया को वर्मीकल्चर बायोटेक्नोलोजी कहा जाता है जिसमें जैविक खाद (वर्मीकम्पोस्ट) तथा केंचुओं का उत्पादन साथ–साथ होता है।

केचुएं के प्रकार :–

1. **गहरी सुरंग बनाने वाले (इन्डोजिक):** ये भूमि में गहरी सुरंग बनाकर रहते है ये 85 प्रतिशत मिट्टी और 15 प्रतिशत तक कार्बनिक पदार्थ को खाते है। जिसके कारण यह प्रजाति वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए उपयुक्त नहीं है।
2. **सतही केंचएं (ऐपिजिक):** ये लाल रंग के होते है जो मृदा को कम (15 प्रतिशत) और कार्बनिक पदार्थो को ज्यादा (85 प्रतिशत) खाते है। अतः वर्मीकम्पोस्ट बनाने हेतु ये अधिक उपयुक्त है।

वर्मीकम्पोस्ट तैयार करने की विधि :

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए सबसे पहले 7 से 8 फिट उँचाई का छप्पर तैयार करें। यदि पेड़ों की घनी छाया हो तो छप्पर की आवश्यकता नहीं है और शेड पानी के स्त्रोत के निकट होना चाहिए।

1. शेड की लम्बाई 30 से 40 फीट व 3 फीट चौड़ी क्यारियां बनायें तथा दो क्यारियों के बीच एक फीट का रास्ता रखें।
2. तैयार क्यारियों में सर्वप्रथम भूसा, तिनके, जुट आदि को 3 इन्च की मोटाई पर बिछावें।
3. इसके ऊपर 2 इन्च मोटी परत आधा सूखे गोबर की डालें व पानी छिड़काव तर करें।
4. इस नम सतह के ऊपर 2 इन्च वर्मीकम्पोस्ट जिसमें केंचुऐं, कोकून व अण्ड़े भी होते है परत बिछावें।
5. इसके बाद 3 इन्च मोटी परत आधा सूखा गोबर तथा 8 से 10 इन्च घास फूस व कचरा की डालें।
6. सभी परतों की ऊंचाई करीब डेढ़ फीट हो तथा नमी सभी सतहों में समान रहें। इसके लिए ऊपर से बोरी टाट से अच्ठी तरह से ढककर पानी छिड़कते रहें।
7. केंचुऐं इस गोबर एवं कचरे को करीब 60 दिनों में वर्मीकम्पोस्ट के रूप में बदल देते हैं।

8. कम्पोस्ट तैयार होने के बाद पानी छिड़कना बन्द कर दें, इससे केंचुऐं निचली परतरें में चले जायेगें। उसके बाद ऊपर से वर्मीकम्पोस्ट को इकठ्ठा कर लेत हैं।

वर्मीकम्पोस्ट के प्रयोग की विधि–

वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग विभिन्न फसलो में अलग – अलग मात्रा में किया जाता है। खेत की तैयारी के समय 2–5 से 3-0 टन प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग कर जुताई कर मिला लेते है । खाद्यान्न फसलो में 5–6 टन प्रति हैक्टर वर्मीकम्पोस्ट प्रयोग किया जाता है।

वर्मीकम्पोस्ट के लाभ -

1. वर्मीकम्पोस्ट में गोबर की खाद की तुलना में अधिक मात्रा में पोषक तत्व पाए जाते है
2. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से मर्दा की जल धारण क्षमता बढ़ जाती है अतः भुमि का कटाव रुक जाता है
3. वर्मीकम्पोस्ट में एक्टिनोमाइसीटीज की मात्रा देसी खाद की तुलना में 8 गुना अधिक होने से फसलो में रोग प्रतिरोध्कता बढ़ती है
4. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से खेत में खरपतवार व दीमक का प्रकोप कम होता है
5. केंचुए ऑक्सीन नामक हार्मोन का स्त्राव करते है जो पोधो की वर्द्धि एंव रोगरोधी क्षमता बढ़ाता है

वर्मीकम्पोस्ट बनाने में सावधानियाँ :

1. वर्मीकम्पोस्ट की बेड हमेशा छाया / शेड के नीचे बनानी चाहिए अर्थात क्यारियों को धुप व वर्षा के पानी से बचाना चाहिए।
2. क्यारियों में 30–35 प्रतिशत नमी रखे व तापमान 20–30 सेन्टीग्रेड होना चाहिए।
3. केंचुओं की मेंढक, लाल चींटी, दीमक, चिड़िया, मुर्गियों, आदि से रक्षा करें।
4. वर्मीकम्पोस्ट हेतु ताजा वानस्पतिक पदार्थो का उपयोग न करें।
5. जमीन में वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग करने के बाद रासानिक व कीटनाशक दवा का उपयोग नहीं करें।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

कीटनाशकों का सुरक्षित इस्तेमाल

दीपिका शर्मा एवं सुरेश चन्द यादव

विद्यावाच्स्पती छात्र, उद्यान विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर

उन्नत खेती के लिए कीटनाशकों का इस्तेमाल सुरक्षित तरीकें से करना अति आवश्यक है।

कीटनाशी खरीदते समय रखी जाने वाली सावधानियां–

1. कीटनाशक दवा हमेशा अधिकृत विक्रेता से ही खरीदें तथा बिल आवश्यक रूप से ले।
2. सुरक्षा की दृष्टि से कीटनाशक दवाओं को परिवहन से पहले अच्छी तरह पैक कर लें तथा रिसाव ना हो इसका ध्यान रखे।
3. जिस कीटनाशक दवा पर पर्चा ना हो उसे ना खरीदे तथा सुनिश्चित कर ले की दवा सील पैक है।

कीटनाशी का घोल बनाते समय रखी जाने वाली सावधानियां–

1. कीटनाशी का घोल बनाने में हमेशा साफ पानी का इस्तेमाल करें।
2. कीटनाशक की बोतल को मुंह से नही खोले।
3. कीटनाशक का घोल बनाते समय दस्तानों का इस्तेमाल करे साथ ही मुंह को कपड़े से ढके।
4. कीटनाशी के डब्बे पर लिखी सावधानियां अच्छे से पढ ले।
5. जरूरत के अनुसार ही कीटनाशी का घोल बनाए।
6. कीटनाशी छिड़काव यंत्र को ना सूंघे।
7 कीटनाशी दवाओं का इस्तेमाल नजदीकी क्षेत्र में कार्यरत सहायक कृषि अधिकारी, कृषि पर्यवेक्षक की सलाह लेकर ही करे।
8. छिद्रित या टूटे फूटे उपकरणों का प्रयोग घोल बनाने में न करे।
9. कीटनाशी का घोल बनाते समय कुछ खाना–पीना, चबाना नहीं चाहिए और ना ही धूम्रपान करना चाहिए।

कीटनाशी का छिड़काव करते समय सावधानियां–

1. कीटनाशक का छिड़काव सुबह एवं सांय के समय ही करें।
2. तपती गरमी व तेज हवा चलने के दौरान कीटनाशी न छिड़के। कीटनाशक का बारिश होने के पश्चात तथा बारिश होने के पूर्व छिड़काव न करें।
3. छिड़काव करते ही खेत में मजदूरों तथा जानवरों का प्रवेश निषेध करें।
4. छिड़काव करते समय हाथों में दस्ताने एवं मुंह पर कपड़ा बांध ले तथा आंखों के बचाव हेतु चश्मा पहने।

भंडारण के समय सावधानियां–

1. घरों में कीटनाशकों का भंडारण करने से बचे।
2. कीटनाशक को कभी चारे या खाने योग्य वस्तुओं के साथ भंडारण न करे।
3. कीटनाशक को बच्चों की पंहुच से दूर रखे।
4. कीटनाशक का सूरज की रोशनी व बारिश से बचाव करे।
5. कीटनाशक को खरपतवारनाशी के साथ नहीं रखें।
6. कीटनाशी डिबों का उपयोग खाद्य पदार्थ एवं पानी के लिए न करे।
7. पेय पदार्थ की बोतलों में कीटनाशी न भरें।

अन्य सावधनियां–

1. कीटनाशक दवाओं को दूसरे डिब्बों में पुनः पैक न करे।
2. कीटनाशक दवा का छिडकाव करने के बाद स्नान कर लेवे एवं कपडो को धो ले।
3. प्रतिदिन के उपयोग के बाद उपकरणों को साफ करे तथा उनकी जांच कर ले।
4. खाली डिब्बो को जला दे या मिटी में दबा दे।
5. कीटनाशी के पात्र अथवा बाल्टी जिसमें घोल बनाया हो उसे इस्तेमाल के बाद अच्छे से साबुन से धोले।

कीटनाशक के हानिकारक प्रभाव रोकने के उपाय :–

1. आंखो में पडे कीटनाशक को साफ पानी से 10 मिनट तक धोएं।
2. संदूषित कपडे तत्काल बदल दे व त्वचा को धो ले।
3. सांस में रूकावट आने पर फौरन कृत्रिम सांस देना आरंभ करे ।
4. कीटनाशक के मुंह द्वारा अंदर जाने पर मुंह से हाथ डाल कर उल्टी करा दें।
5. यदि किसी छिडकाव वाले व्यक्ति में विष के लक्षण जैसे चक्कर आना, जी घबराना, उल्टियां व बेहोशी आदि दिखाई दे तो तुरंत नजदीकी अस्पताल ले जाकर चिकित्सक से इलाज करवाएं व कीटनाशक से संबंधित पर्चा भी ले जाएं।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

ग्लेडियोलस की व्यावसायिक खेती

रवि कुमार मीणा, झूमर लाल एवं चन्द्र प्रकाश नामा
राजस्थान कृषि महाविद्यालय,
महाराणा प्रताप कृषि एवम् प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर 313001
ईमेलः ravihort9@gmail.com

ग्लेडियोलस शब्द लेटिन भाषा के शब्द 'ग्लेडियस' से बना है, जिसका अर्थ 'तलवार' है क्योंकि ग्लेडियोलस की पत्तियों का आकार तलवार जैसा होता है । इसके आकर्षक फूल जिन्हें लोरेट भी कहते हैं, पुष्प दंडिका (स्पाइक) पर विकसित होते हैं और ये दस से चौदह दिनों तक खिले हुए रहते हैं। इसका उपयोग कट फ्लावर एवं आन्तरिक गृह सजा के लिए किया जाता है । ग्लेडियोलस की कुछ अद्वितिय विशेषताओं जैसे अधिक लाभ, आसान खेती, शीघ्र पुष्प प्राप्ति, पुष्पकों के विभिन्न रंगों, स्पाइक की अधिक समय तक तरोताजा रहने की क्षमता एवं कीट रोगों के कम प्रकोप आदि के कारण इसकी लोकप्रियता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है ।

भूमि एवं जलवायु –

ग्लेडियोलस की खेती सभी प्रकार की मृदाओं मे की जा सकती है, किन्तु बलुई दोमट मृदा जिका पी. एच.मान 5.5 से 6.5 के मध्य हो तथा जीवांश पदार्थ की प्रचुरता हो, साथ ही भूमि के जल निकास का उचित प्रबंध हो, सर्वोत्तम मानी जाती है। खुला स्थान जहां पर सूर्य की रोशनी सुबह से शाम तक रहती हो, ऐसे स्थान पर ग्लेडियोलस की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

खेत की तैयारी –

जिस खेत में ग्लेडियोलस की खेती करनी हो उसकी 2–3 बार अच्छी तरह जुताई करके मिट्टी को भुरभुरा बना लेना चाहिए। इसकी खेती के लिए भूमि की गहरी जुताई की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि इसकी जड़ें भूमि में अधिक गहराई तक नहीं जाती है। जुताई करने के बाद छोटी–छोटी क्यारियां बना लेनी चाहिए। क्यारियों को जमीन की सतह से 15 से 20 से.मी. उंचाई पर बनानी चाहिए, ताकि अनावश्यक पानी वहां पर अधिक समय तक न ठहर सके।

उपयुक्त किस्में –

ग्लेडियोलस में विभिन्न रंगों की अनेक उत्तम गुणवत्ता वाली प्रजातियां प्रचलित हैं जो कि निम्न प्रकार हैं:–

1. लाल अमेरिकन ब्यूटी, ऑस्कर, नजराना, रेड ब्यूटी
2. गुलाबी पिंक फ्रैंडशिप, समर पर्ल, पिंक जाइन्ट
3. नारंगी रोज सुप्रीम
4. सफेद व्हाइट फ्रैंडशिप, व्हाइट प्रोस्पेरिटी, स्नो व्हाइट, मीरां
5. पीला टोपाज, सपना, टी.एस–14
6. बैंगनी हरमैजस्टी

घनकन्दों की बुआई –

ग्लेडियोलस की खेती घनकन्दों (कार्मस) द्वारा की जाती है। बुआई करने का उपयुक्त समय मध्य अक्टूबर से लेकर नवम्बर तक रहता है। घनकन्द स्वस्थ व रोगमुक्त होने चाहिए तथा कहीं से भी कटे–फटे भी नहीं होने चाहिए। घनकन्दों को बुआई से पूर्व 2 ग्राम बावस्टिन 1 लीटर पानी में घोल बनाकर 30–40 मिनट तक डुबोकर उपचारित कर लेना चाहिए, इन उपचारित घनकन्दों को छाया में अच्छी तरह से सुखाकर बुआई करनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक –

खेत की तैयारी के समय गोबर की अच्छी सड़ी–गली खाद, फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा मिट्टी में भली भांति मिला देनी चाहिए जबकि नत्रजन की मात्रा को दो भागों में, प्रथम मात्रा तीसरी पत्ती आने के समय और शेष आधी बची हुई मात्रा छठवी पत्ती आने पर देनी चाहिए।

सिंचाई –

पहली सिंचाई घनकन्दों के अंकुरण के बाद तथा इसके बाद सर्दियों में 10–12 दिनों के अंतराल पर और ग्रीष्म ऋतु में 5–6 दिनों के अन्तराल पर करनी चाहिए। स्पाइक निकलने की अवस्था में सिंचाई का विशेष महत्व है। इस समय खेत में उचित समय के अन्तराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए तथा यह भी ध्यान रखें कि क्यारियों में पानी का जमाव ज्यादा समय तक न रहे क्योंकि ऐसी स्थिति बिमारियों को बुलावा देती है।

खरपतवार नियंत्रण –

खरपतवार जब छोटा रहे उसी समय खेत से बाहर निकाल देना चाहिए। पौधों की छोटी अवस्था में निराई–गुड़ाई का भी विशेष महत्व है। पहली गुड़ाई घनकन्दों के अंकुरण के 15 दिन बाद तथा दूसरी इसके 30 दिन बाद करनी चाहिए।

फूलों की कटाई –

घनकन्दों की बुआई के पश्चात् अगेती किस्मों में लगभग 60–65 दिनों में, मध्य किस्मों में 80–85 दिनों मे तथा पछेती किस्मों में लगभग 100–110 दिनों में पुष्प उत्पादन होना शुरू हो जाता है। पुष्प दंडिकाओं(स्पाइक) का काटने का समय बाजार की दूरी पर निर्भर करता है। स्थानीय बाजारों के लिए पुष्प दंडिकाओं को उस अवस्था में काटना चाहिए, जब निचले 2–3 पुष्प खिल जाए तथा दूरस्थ बाजारों में भेजने के लिए पुष्प दंडिकाओं को तभी काटना चाहिए जब निचली 2–3 पुष्प कलियां रंग दिखाने लग जाए। पुष्प दंडिकाओ की कटाई प्रातः कालीन अथवा शाम के समय जब धूप ना हो तेज धार वाले चाकू या सिकेटियर की सहायता से करनी चाहिए। पुष्पदंडिकाओ को काटने के बाद पानी से भरी हुई बाल्टी में डालते रहना चाहिए जिससे वे अधिक समय तक तरो –ताजी बनी रहे।

घनकन्दों की खुदाई –

पुष्प दंडिकाओं की कटाई के लगभग 60–75 दिनों के बाद घनकन्दों तथा छोटे घनकन्दों (कार्मलैट्स) की खुदाई कर लेनी चाहिए। खुदाई से पूर्व यह अच्छी तरह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि घनकन्द अच्छी तरह परिपक्व हो गए हो तथा इस समय पौधे की पत्तियां भी सूख गई हो। घनकन्दों की खुदाई ऐसे समय करनी चाहिए जब मौसम बिल्कुल साफ हो। खुदाई के पश्चात घनकन्दों को उनके आकार के अनुसार अलग – अलग भागों में विभक्त करके रख देना चाहिए। इनको भण्डारण करने से पूर्व अच्छी तरह साफ करके ऊपर का सूख तना और मोटे शल्क पत्र सावधानीपूर्वक हटा लेना चाहिए। इसके बाद घनकन्दों को 2 ग्राम बावस्टिन का एक लीटर पानी में घोल बना कर 30 मिनट तक उपचारित कर अच्छी तरह से छाया में सुखाने के बाद 4–6 डिग्री सेल्सियस तापमान पर भंडारित कर लेना चाहिए।

बीमारियां एवं उपचार –

1.फ्यूजेरियम रोट – इस रोग का प्रमुख लक्षण यह है कि इसमें पत्तियां पीली पड़ने लगती है और धीरे–धीरे पूरा पौधा पीला पड़कर सूख जाता है।

रोकथाम – खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखने पर बावस्टिन एक ग्राम प्रति लीटर पानी अथवा केप्टान 3 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

2.घनकन्द सड़न – भण्डारण के समय घनकन्दों पर फफूंद से काले धब्बे पड़ जाते है और धीरे–धीरे पूरा घनकन्द सड़ जाता है। हल्के प्रभावित घनकन्दों की यदि बुआई कर भी दी जाए तो जमाव के तुरन्त बाद पत्तियां पीली पड़ जाती है और प्रभावित पौधें की पुष्पदंडिका भी छोटी रह जाती है।

रोकथाम – घनकन्दों का भंण्डारण करने से पूर्व बावस्टिन 2 ग्राम प्रति लीटर पानी से उपचारित कर लेना चाहिए।

4. कार्म गलन – इस बीमारी से ग्रस्त पौधे की पतियां पीली होने लगती हैं और बढ़वार रूक जाती है। इस बीमारी की रोकथाम करने के लिए 0.2 प्रतिशत कैप्टान या बाविस्टिन के घोल से मिट्टी का उपचार करें।

5. पत्तों का झुलसा रोगः– पत्ते के किनारे पर गहरे भूरे रंग के दाग पड़ जाते हैं जिसकी रोकथाम के लिए डाइथेन एम–45 नामक दवाई का (0.2प्रतिशत) छिड़काव सप्ताह के अन्तराल पर दो–तीन बार करें।

विशेष ध्यान रखने योग्य बातें –

- ✓ जब पौधे लगभग 20–30 सै.मी. ऊँचे हो जाये, उस समय 10–15 सै.मी. की ऊँचाई तक मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। जिससे पौधे हवा या वर्षा से नीचे ना गिरे।
- ✓ जिन किस्मों के पुष्प दंडिका ज्यादा लम्बे हों या तना कमजोर हो, उन्हें बांस के 1–1.5 मीटर लम्बे डण्डों से सहारा दे, समय पर सहारा देने से पौधे सीधे खड़े रहते है तथा पुष्प दंडिका की गुणवत्ता भी अच्छी रहती है।

फूलों की तुड़ाई एवं पैंकिंग –

दूर की मण्डी में भेजने के लिए पुष्प डंडी पर सबसे पहली काली रंग बदलने लगे तब काटें। नजदीक की मण्डी में भेजने के लिए फूल का खिलना शुरू होने पर पुष्पडंडी को काटें। पुष्पडंडियों को डिब्बा बन्दी करने से पहले 400 पी.पी.एम. (400 मिलीग्राम प्रति लीटर) की दर से 3 प्रतिशत शक्कर के घोल में तीन घंटों के लिए डुबोए। मण्डियों में भेजने के लिए गत्ते के डिब्बे में बण्डल बनाकर भेजना चाहिए।

कंदों का भडारण –

जब पौधों के पत्ते पीले पड़कर सूखने लगें तब छोटे–बड़े कंदों को मिट्टी से निकाल कर 0.1 प्रतिशत बैनलेट या 0.2 प्रतिशत कैप्टान के घोल में उपचारित करें तथा भण्डारण से पहले उन्हें छाया में सुखायें। ठंडे कमरे में या रेत पर छायादार जगह में कोर्म को रखें। 4 से 6 सैंटीग्रेड तापमान पर, शीत–भण्डार में कोर्म को पूरी तरह सुरक्षित रखा जा सकता है।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

विलुप्तप्रायः औषधीय पौधे 'गुग्गल' की खेती

रजनी वर्मा, एम. एल. जाखड़', रमेश कुमार'' एवं रवि कुमार
विद्यावाचस्पति (शोध छात्र), पादप प्रजनन एवं आनुवंशिकी विभाग
श्री करण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, (राजस्थान)
' विभाग के प्रमुख (भ्व्क्) एवं प्राध्यापक, पादप प्रजनन एवं आनुवंशिकी विभाग, श्री क. न. कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर–303329 (राजस्थान)
'' जूनागढ़ कृषि विश्वविद्यालय, जूनागढ़–362001 (गुजरात)
Email: rajaniverma84@gmail.com

गुग्गल का वृक्ष

गुग्गल ब्रूसेरेसी कुल का एक बहुशाकीय झाड़ीनुमा पौधा है। यह पौधा छोटा होता है एवं शीतकाल और गीष्मकाल में धीमी गति से बढ़ता है। इसके विकास के लिए वर्षा ऋतु उत्तम रहती है। अधिक कटाई होने से यह आसानी से प्राप्त नहीं होता है।

उत्पति:

यह मूल रूप से एशिया व अफ्रीका का पौधा है। यह भारत के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों, बांग्लादेश, आस्ट्रेलिया, पाकिस्तान और प्रशांत महासागर में पाया जाता है। भारत में यह म.प्र., राजस्थान, तमिलनाडु, आसाम, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक और छत्तीसगढ़ में पाया जाता है। मध्यप्रदेश में यह ग्वालियर और मुरैना जिलों में पाया जाता है।

गुग्गल से प्राप्त राल (रेजिन)

इसके तनों व शाखाओं से जो गोंद निकलता है वही गुग्गल कहलाता है। गुग्गल उपयोग से कोई खतरनाक प्रभाव नहीं होता है फिर इसका लंबे समय तक उपयोग करने से हल्के पेट दर्द की शिकायत होती है। इसका दीर्घ कालीन उपयोग गलग्रंथि, थायराइट और गर्भाशय को प्रभावित करता है अत: इसका उपयोग गर्भधारण के दौरान नहीं करना चाहिए। अग्रेंजी में इसे इण्डियन बेदेलिया भी कहते हैं। रेजिन का रंग हल्का पीला होता है परन्तु शुद्ध रेजिन पारदर्शी होता है।

जलवायु एवं भूमि:

गुग्गल उगाने के लिए उष्णतकटिबंधीय, कम वर्षा वाले तथा शुष्क जलवायु वाले क्षेत्र उपयुक्तक होते हैं। यह अन्य छायादार वृक्षों के साथ अधिक वृद्धि करता है। अतरू इसे वनो या बगीचों में, खेतो की मेढों पर, छायादार पेडों के नीचे, फैंसिगं के रूप में लगाया जा सकता है। रेतीली, पहाडी मृदा जिसमें जल निथार अच्छा हो, इसके लिए बहुत उपयुक्त है। यह शुष्क स्थानों में भी अच्छी वृद्धि करता है इसलिए असिंचित क्षेत्रों में आसानी से उगाया जा सकता है। गुग्गल भू छरण या पडती भूमि के विकास हेतु उपयुक्ति है।

बुआई:

बीज से गुग्गल की बुआई करने पर बहुत ही कम (सिर्फ 5:) पौधे तैयार होते हैं क्योंकि इससे बीजों का अंकुरण धीमी गति से और कम होता है जिसका कारण बीजों का कठोर आवरण है। इसलिए गुग्गल संवर्धन ज्यौदातर कलमों से ही किया जाता है। जून–जुलाई में करीब 10 मिलिमीटर मोटाई की मजबूत कलमें काटकर नर्सरी में पोलीबैग में एक वर्ष के लिए रखते हैं जिन्हें एक वर्ष बाद खेत में रोपित करते हैं। सिंचित दशा में रोपाई का काम फरवरी तक किया जा सकता है। पौधे से पौधे की दूरी एक मीटर तथात कतार से कतार की दूरी दो मीटर रखते है। एक एकड में लगभग दो हजार पौधे रोपित किये जाते हैं।

नर्सरी बिछौना–तैयारी (Bed&Preparation) :

नर्सरी को खाद डालकर अच्छी तरह तैयार करना चाहिए। काटी गई कलम को नर्सरी में लगाना चाहिए।

काटी गई कलम को IBA अथवा NAA द्वारा उपचारित किया जाता है। नर्सरी में पौधे लगाने के बाद हल्की सिंचाई करना चाहिए। नियमित काटकर लगाई गई कलमों में अंकुरण 10–15 में हो जाता है। और वे खेत में लगाने के लिए 10–12 महीने के बाद तैयार हो जाती है।

गुग्गल की देखभाल:

रोपाई के समय प्रति पौधा दस किलोग्राम गोबर की सडी हुई खाद देने से पौधों का अच्छा विकास होता है। खाद में नीम की खली मिलाकर डालने से दीमक से बचाव हो जाता है। पौधे रोपित करने के प्रथम वर्ष में एक डेढ माह के अंतर से पानी देना चाहिए। इसके बाद सामान्यत: सिंचाई की आवश्यकता नही पडती। गुग्गल को सामान्यरता अधिक निराई की आवश्यकता नही होती फिर भी निंदा बढने पर निकाल दें। विशेषकर पौधों से लिपटने वाले खरपतवार का एकदम नष्ट कर दें। समय समय पर गुडाई करके पौधों के आसपास की भूमि का भुर–भुरा बनाना चाहिए।

कीट प्रबंधन:

1) कीट : डाईलेरोडेस डयूजेनिया (सफेद मक्खी)

पहचानना : यह कीट भी पत्तियों के रस को चूस लेती है। पत्तियाँ पीली पड़ जाती है और अन्त में झड़ जाती है।

(2) कीट : केरिया सब्टिलिस (लीफ ईटिंग केटरपिलर) पहचानना : यह कीट भी पत्तियों के रस को चूस लेती है।

पत्तियाँ पीली पड़ जाती है और अन्त में झड़ जाती है।

उपज व आय:

गुग्गल के पौधों से पहली उपज करीब 8 वर्ष बाद प्राप्त होती है। इसके मुख्या तने को छोडकर इसकी शाखाओं में चीरा लगाकर सफेद दूध या गोंद प्राप्त किया जाता है। एक पेड की छंटाई से शुरूआत में सोलवेंट प्रोसेस के द्वारा 600 ग्राम से एक किलोग्राम तक शुद्ध गुग्गल प्राप्त होता है। जिसकी मात्रा हर कटाई के बाद,पेड की उम्र के साथ लगातार बढती रहती है। सोलवेन्ट प्रोसेस से निकाले गये गुग्गल की शुद्धता चूंकि 100 प्रतिशत रहती है अत: इसका बाजार बाजार भाव लगभग 250 रूपये प्रति किलो तक मिल जाता है। चूकि यह जगलों से तेजी से विलुप्त हो रही है तथा इसका प्रयोग बढ रहा है अत: इसके बाजार भाव में लगातार तेजी की उम्मी्द है।

एक एकड क्षेत्र में करीब 2000 पौधे लगाये जा सकते हैं। प्रत्येअक पौधें से अगर हम एक साल छोडकर फसल लें तो 800 ग्राम औसत शुद्ध गुग्गल के हिसाब से करीब 2 लाख रूपये प्रति एकड प्रति वर्ष की आय प्राप्त होगी जिसमें हर साल तीव्र वृद्धि होती रहेगी। जो किसान इसे पूरे खेत में नही उगाना चाहते वे मेढ के सहारे 2 या 3 लाईन लगा सकते हैं।

फसल काटने के बाद और मूल्य परिवर्धन निष्कर्षण:

यह प्रक्रिया साल्वेंट विधि द्वारा की जाती है। इसे 120–1300°ब के तापमान पर किया जाता है। शुध्द रेजिन पारदर्शी होता है जिस पर पतली फिल्म होती है किन्तु अधिक मात्रा में होने के कारण पारभाषी और अस्पष्ट दिखाई देता है। यह केस्टर तेल, तारपीन तेल में पूर्णतरू घुलनशील होता है।

भडांरण (Storage):

टपकते हुये गुग्गल को मिट्टी के बर्तन में इकट्ठा करते है।

परिवहन :

सामान्यत: किसान अपने उत्पाद को बैलगाड़ी या टैक्टर से बाजार तक पहुँचता हैं। दूरी अधिक होने पर उत्पाद को ट्रक या लॉरियो के द्बारा बाजार तक पहुँचाया जाता हैं। परिवहन के दौरान चढ़ाते एवं उतारते समय पैकिंग अच्छी होने से फसल खराब नहीं होती हैं।

अन्य–मूल्य परिवर्धन (Other&Value&Additions) :

गुग्गल कॅलोस्ट्राल, गुग्गल एक्सट्रेक्ट, गुग्गल गम, त्रिफला गुग्गल

गुग्गल के औषधीय उपयोग:

- ✓ भारत में गुग्गल एक महत्वपूर्ण आयुर्वेद जड़ी बूटी के रूप में इस्तेमाल किया गया जाता है।
- ✓ आदिवासी लोग इसके औषधीय मूल्य की वजह से इसकी टहनी को टूथब्रश के रूप में उपयोग करते है।
- ✓ रक्त शर्करा के स्तर को कम करने के लिए प्रयोग किया जाता है।
- ✓ यह थायराइड के कार्य में मदद करता है। यह स्तन कैंसर को कम करने में भी साबित हो गया है।
- ✓ यह दिल की बीमारियों के प्रतिकूल भी इस्तेमाल किया जाता है, क्योंकि स्ट्रोक को कम कर देता है।
- ✓ गुग्गल में मौजूद लिपिड उच्च रक्तचाप को कम करता है।
- ✓ गुग्गल रेजिन का उपयोग गठिया रोग, तंत्रिका संबंधी रोग, बवासीर, अस्थमा, पथरी, छाले तथा मूत्रवर्धक रोग के उपचार में किया जाता है। इसका उपयोग सुगंध, इत्र व औषधीय में भी किया जाता है।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

तरल जैव उर्वरकों का कृषि में महत्व

ओम प्रकाश प्रजापत[1] सुरेश चन्द यादव[2]
[1]राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दूर्गापूरा जयपुर
[2]श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय एस. के. एन. कृषि विश्वविद्यालय जोबनेर

भारत एक कृषि प्रधान देश है। देश कि 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है और खेती ही 65 प्रतिशत जनसंख्या की आय का स्त्रोत है। देश कि जनसंख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है जिससे देश में खाद्य आपूर्ती की समस्या भी बढ़ती जा रही है देश कि सम्पूर्ण जनसंख्या को लम्बे समय तक खाद्य आपूर्ती करने के केवल दो ही तरीके है प्रथम कृषि योग्य भूमि के क्षेत्र में वृद्धि करके एवं प्रति इकाई जमीन में उत्पादन बढ़ाकर।

चूँकी देश की जनसंख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है इसलिए सभी को रहने के लिए घर की भी आवश्यकता है अतः देश की कृषि योग्य भूमी दिनों दिन घटती जा रही है साथ ही साथ बढ़ते शहरीकरण व उद्योग धंधों के बढ़ने से कृषि योग्य भूमि कम होती जा रही है। अतः भूमि की प्रति इकाई उत्पादन बढ़ाकर ही सम्पूर्ण जनसंख्या को खाद्य की आपूर्ती की जा सकती है। प्रति इकाई भूमि में उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिकाधिक रासायनिक उर्वरक जैसे युरीया, डी ए पीए एम ओ पीए मजबण को काम में लिया जाता है। जिसमें धीरे–धीरे भूमि की उर्वरता पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है साथ ही साथ दिनों दिन पैट्रोलियम पदार्थों की कीमत बढ़ती जा रही है। रासायनिक उर्वरकों को बनाने के लिए तापमान व दबाव बनाने के लिए पेट्रोलियम पदार्थों को काम में लिये जाते है जिससे कि रासायनिक उर्वरकों की कीमत भी दिनों दिन बढ़ती जा रही है। इस स्थिति में मृदा कि उर्वरता बनाये रखने, गुणवता युक्त एवं उपयुक्त मात्रा में खाद्य उपलब्ध कराने के लिए जैव उर्वकता ही सबसे अच्छा स्त्रोत है।

जैव उर्वरक ऐसे पदार्थ होते है जिन्हें प्रयोगशालाओं में अध्ययन करके खेत में काम में लिए जाते है। जिससे कि ये जैव उर्वरक वायुमण्डल में उपस्थित नदाजन को पौधों की जड़ों की गाँइों में एवं फास्फोरस व पोटारा को मृदा में उपस्थित उन उपलब्ध रूप के उपलब्ध होने वाले रूप में बदलते है जो की पौधों को आसानी से प्राप्त हो जाते हैं। यह जैव उर्वरकों वैज्ञानिक कई वर्षों से काम से लेते आ रहा है लेकिन ये जो जैव, उर्वरक काम में लेते है ये ठोस रूप में आते है जिससे कि जो परिणाम इनसे मिलने चाहीए वह नहीं मिल पाते हो। इस समस्या से निजात पाने के लिए वैज्ञानिकों ने नये तरल जैव उर्वरकों की खोज की जो कि ठोस या (पाऊडर रूप) से अच्छे परिणाम देते है।

तरल व ठोस जैव उर्वरकों में अन्तर

तरल जैव उर्वरक	ठोस जैव उर्वरक
1. इसमें 12–24 महीने तक जीवाणु नष्ट नहीं होते। 2. इसमें जीवाणु 45ह्ब तापमान पर भी नष्ट नहीं होते। 3. इसमें मिश्रण की कोई सम्भावना नहीं है। 4. इसको बनाने में कम खर्च आता है। 5. पाऊडर जैव उर्वरक की अपेक्षा बीज व मृदा में अधिक प्रभावी। 6. पाऊडर जैव उर्वरक की अपेक्षा कम मात्रा में काम में ले सकते है। 7. निर्यात करने की अधिक सम्भावना	1. इसमें 2–3 महीने बाद जीवाणु नष्ट हो जाता है। 2. यह अधिक तापमान सहन नहीं कर सकते। 3. इसमें व्यापारी चारकोल, गोबर की खाद आदि मिला देते है। 4. इसको बनाने में अधिक खर्च आता है। 5. यह कम प्रभावी है। 6. यह अधिक मात्रा में काम में लेना पड़ता है। 7. इसकी निर्यात में कम सम्भावना है।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

स्टीविया उत्पादन की उन्नत जैविक कृषि तकनीक

डॉ. आर. बी. दुबे[1], मीनाक्षी धूत[1] एवं डॉ. कपिलदेव आमेटा[2]
[1]पादप प्रजनन एवं आनुवांशिकी विभाग [2]उद्यान विज्ञान विभाग
राजस्थान कृषि महाविद्यालय
महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर 313001 (राजस्थान)

परिचयः– स्टीविया एस्टेरेसी कुल का बहुवर्षीय शाकीय पौधा है जिसे मधुपत्र एवं मीठी तुलसी के नाम से भी जाना जाता है इसका वानस्पतिक नाम स्टीविया रेवॉडियाना बेरटोनी है। इसमें गुणसूत्र संख्या 2n=22 होते है। पौधे की ऊँचाई 60–70 सेमी के मध्य होती है। शाखा के ऊपरी सिरे पर सफेद रंग के गुच्छों में छोटे–छोटे पुष्प निकलते है। इसका बीज बहुत बारीक काले रंग का होता है। स्टीविया की पत्तियों में बहुत अधिक मिठास होती है। स्टीविया के पौधे में कई तत्व पाये जाते है लेकिन स्टीवियोंसाइड एवं रेवॉडियोसाइड मुख्य है जो स्वाद में मीठा होता है इसे पत्तियों से निकाल कर उपयोग में लेते है। स्टीवियोंसाइड एवं रेवाडियोसाइड की पत्तियों में मात्रा 3–20% तक पायी जाती है। स्टीवियोंसाइड एवं रेवॉडियोसाइड की यह मात्रा वातावरणीय कारक एवं कटाई की अवस्था पर निर्भर करती हैं। इसकी अधिकतम मात्रा पुष्प आने से ठीक पहली की अवस्था में होती है।

उपयोगः– स्टीविया सामान्यतः शक्कर की तुलना में 25–30 गुना मीठा होता है। इसलिए इसे शक्कर के विकल्प के रूप में देखा जा रहा है। यह शक्कर से कई गुना मीठा तो है ही साथ ही साथ कैलोरी रहित है। कैलोरी रहित होने के कारण यह मोटापा बढ़ने से रोकने में भी सुरक्षित समझा जाता है। यह मधुमेह रोग में, रक्तचाप, दॉतों एवं मसूड़ों में होने वाली बीमारियों, चर्मरोगो, पेनक्रियाज से इन्सुलिन बनाने आदि में उपयोगी है। इसमे जीवाणु एवं विषाणुरोधक गुण भी पाये जाते है। कई तरह के उत्पादो में स्वाद बढ़ाने में भी इसका उपयोग किया जा रहा है। इसका उपयोग व्यापक स्तर पर टूथपेस्ट, माउथवॉश, च्विगंम, धूम्रपान प्रतिरोधी टिकियों के बनाने में फार्मेस्युटीकल्स में, चीनी के विकल्प के रूप में खाद्य पदार्थो, हर्बल चाय, एवं पेय पदार्थो में किया जाता है।

उत्पादः– स्टीविया के कई उत्पाद जैसे सूखे पत्तों का बारीक पाउडर, ताजे पत्ते, पेय, स्टीविया पैकट, स्टीविया की घुलनशील गोलिया आदि बाजार में उपलब्ध है।

उत्पत्तिः– स्टीविया का उत्पत्ति स्थान पैराग्वे माना जाता है। जहॉ पर यह जंगलों में बहुतायत से पाया जाता है। यह प्रजाति उत्तरपूर्व पैरागुआ में प्राकृतिक रूप से नदियों एवं तालाबों के किनारे पायी जाती है। यह पौधा पैरागुआ का मधुरशाक (स्वीटहर्व) कहलाता है।

जलवायुः– स्टीविया समशीतोष्ण एवं उपोष्ण कटिबन्धीय जलवायु का लघु दिवसीय पौधा है। ऐसे क्षेत्र जहॉ औसत वार्षिक वर्षा 140 सेमी होती है तथा तापमान 10-37^{0}C के मध्य रहता है। वहॉ इसकी खेती आसानी से की जा सकती है। इसकी अच्छी वृद्धि के लिए 65–85% आर्द्रता होनी चाहिए। हल्का ठंडा मौसम इसकी अच्छी बढ़वार के लिये लाभदायक है। ऐसे क्षैत्र जहां तापमान बहुत अधिक एवं गर्म हवाऐ चलती है या पाला पड़ने की अधिक सम्भावना रहती है, उन क्षैत्रों में इसकी खेती सम्भव नही है।

भूमिः– स्टीविया की खेती के लिए उचित जल निकास वाली बलुई दोमट एवं लाल दोमट मिट्टी जिसका पी. एच. 5.5–7.5 के मध्य हो उत्तम समझी जाती है। क्षारीय मृदा में इसकी खेती सम्भव नही है। ऐसी भूमि जहॉ पानी भरता हो वहॉ इसकी खेती करना सम्भव नही है।

खेत की तैयारीः– स्टीविया की खेती के लिए ग्रीष्म ऋतु में गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें इसके बाद दो जुताईयॉ हेरो से करे। अंतिम जुताई से पहले 25–30 टन प्रति हैक्टेयर के हिसाब से अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद खेत में मिलाये, तथा पाटा लगाकर खेत को समतल करके डोलियॉ बनाये। डोलियों की दूरी आपस में 45 सेमी रखे तथा ऊॅचाई 10–12 सेमी रखे। मृदाजनित रोगों तथा दीमक के से सुरक्षा के लिए प्रति हैक्टेयर 300 से 400 कि.ग्रा. नीम की पिसी हुई खली भी खेत में मिलानी चाहिए है।

उन्नत किस्मेंः– अभी तक स्टीविया की कोई उन्नत किस्म विकसित नही की गयी है। अधिक पैदावार देने वाली स्थानीय किस्म जिसमें स्टीवियोंसाइड एवं रेवॉडियोसाइड की मात्रा अधिक हो उसकी बुवाई कर सकते है।

नर्सरी की तैयारीः– स्टीविया का प्रसारण बीजों एवं तने की कलमों द्वारा किया जाता है। इसके बीजो में अंकुरण सामान्यतः बहुत कम पाया जाता है तथा बीज बहुत ही बारीक होता है।

बीजों की नर्सरीः– बीजों द्वारा नर्सरी फरवरी मार्च में तैयार करें तथा इसके लिए छायादार स्थान का चुनाव करें, चुने हुए खेत की अच्छी तरह गुड़ाई करके उसमें अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद तथा बालू मिलाकर समतल करे तथा 1.25 मीटर चौड़ी तथा आवश्यकतानुसार लम्बी क्यारियॉ बनाऐं। इसके बाद लाइनों में बीज बोये तथा हल्की मिट्टी या बालू एवं गोबर की खाद मिलाकर हल्की परत बीजों पर बिछाऐं बीजों को अधिक गहराई पर न बोयें अन्यथा अंकुरण प्रभावित होगा। बीजों की बुवाई के बाद हल्की सिचाई करे, नमी को सुरक्षित रखने के लिए घास की हल्की परत बिछाऐ, 10–15 दिनों में बीजों का अकुंरण हो जाता है। प्रतिदिन सुबह शाम झारे से हल्की सिचाई करे। जब पौधे 8–10 सेमी के हो जाये तो उन्हे मुख्य खेत (पहले से तैयार) में जून जुलाई में रोपित करे इन बीजों को ग्रीन हाउस में बालू मिट्टी एवं गोबर की खाद को मिश्रित कर प्लास्टिक की ट्रे या लकड़ी के बॉक्स में भी उगाया जा सकता है।

कलमों द्वारा पौधे तैयार करनाः– कलमों को जुलाई–अगस्त या फरवरी–मार्च में नर्सरी में लगायें। कलमों की नर्सरी आंशिक रूप से छायादार स्थान या ग्रीन हाउस में तैयार करे। नर्सरी के लिए चुने गये स्थान में रेती एवं सड़ी हुई गोबर की खाद डालकर खेत की गुड़ाई करे तथा खेत को समतल कर ले तथा क्यारिया बनाऐं, क्यारियों की चौड़ाई 1.25 मीटर तथा लम्बाई आवश्यकतानुसार रखे। इसके बाद परिपक्व तने की 10–15 सेमी लम्बी जिसमें 4–6 गाठे हों कटिंग करे तथा तने से पत्तियों को हटा दे तथा कलमों को नर्सरी में 12–15 सेमी की दूरी पर लगाऐ। कलमों का लगभग आधा भाग जमीन के अन्दर दबाऐ इन कलमों को पॉलीथीन बेग्स में भी लगाया जा सकता है। कलमें लगाने के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करे। कलमों से लगभग 10–15 दिनों में जड़ निकल जाती है। आवश्यकतानुसार हल्की सिंचाई करते रहे।

मुख्य खेत में रोपाई का समयः– स्टीविया की रोपाई मुख्य खेत में जुलाई–अगस्त एवं फरवरी–मार्च में करनी चाहिए। नर्सरी में तैयार पौधों में जब 5–6 पत्तियॉ आ जाये तथा पौधे की ऊॅचाई 8–10 सेमी की हो जाये उस समय इन्हे उखाड़कर मुख्य खेत में रोपित करे।

रोपाई की विधिः– रोपाई हमेशा लाइनों में डोलियों के उपर करे लाइन से लाइन की दूरी 45 सेमी तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 सेमी रखे। रोपाई के तुरन्त बाद हल्की सिचाई करें जिससे पौधे अच्छी तरह स्थापित हो सके।

पौधे की संख्याः– एक हेक्टेयर क्षेत्र में रोपाई करने के लिए लगभग 75,000 स्टीविया के पौधो की आवश्यकता होगी।

खाद :– स्टीविया की अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए 25–30 टन प्रति हैक्टेयर की दर से अच्छी प्रकार से सड़ी हुई गोबर की खाद खेत की तैयारी के समय मिट्टी में मिलाऐं इसके अतिरिक्त 3 से 4 क्विटल नीम की खली का चूरा प्रति हैक्टेयर की दर से खेत में मिलाऐं ।

स्टीविया की फसल

सिंचाईः– स्टीविया की फसल सूखे को सहन नही कर सकती है इसको अधिक पानी की आवश्यकता होती है। अगर फसल की रोपाई फरवरी मार्च में की जा रही है तो प्रथम सिंचाई रोपाई के तुरन्त बाद करे, दूसरी सिंचाई 5–6 दिन बाद करे जिससे पौधे पूर्ण रूप से स्थापित हो सके। यदि फसल की रोपाई जुलाई अगस्त में की जा रही है तो अगर बरसात नही होने की स्थिति में रोपाई के तुरन्त बाद सिंचाई करें अन्यथा सिंचाई की आवश्यकता नही है। गर्मी के दिनो में सिंचाई 8 दिनों के अन्तराल पर या आवश्यकतानुसार करे। फव्वारा विधि से सिंचाई करना इसके लिए अधिक उत्तम है।

अन्तराशस्य कियाऐं :– फसल की निराई–गुडाई कर फसल को खरपतवार रहित रखे। जैविक मल्चिंग के द्वारा खरपतवारो के अंकुरण को नियत्रिंत किया जा सकता है।रसायनिक खरपतवारनाशी का प्रयोग न करें। नियमित अन्तराल पर निराई–गुडाई करते रहना चाहिए जिससे मृदा नमी बनी रहे।

फसल सुरक्षाः– इस फसल में कोई विशेष बीमारी तथा कीट पंतगो का प्रकोप नही देखा गया है। कभी–कभी बोरॉन की कमी के लक्षण पत्तियों पर धब्बे के रूप में पाये जाते है। जिसे बोरेक्स 6% के छिड़काव से नियंत्रित किया जा सकता है।

पुष्पों /कलियों को तोड़नाः– कटाई हमेशा फूल आने से पहले करें फूल आने के बाद कटाई करने पर स्टीवियोसाइड तथा रेवॉडियोसाइड की मात्रा में कमी आयेगी। अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए फूलों की कलियॉ बनते समय उन्हे तोड़ देना चाहिए इन कलियो को रोपाई के 30, 45, 60, 75 एवं 85 दिन बाद तोड़ते रहे ताकि पौधे की अन्य शाखाये अधिक फैलाव ले सके। सामान्यतः रेटून फसल में 45 दिनों के बाद ही पुष्प आने लगते है। इसमें 40 एवं 55 दिन के बाद कलियो को तोड़ दे।

कटाईः– स्टीविया की फसल की प्रथम कटाई रोपाई के 90 दिन के अन्तराल पर करनी चाहिए यदि फसल की रोपाई जुलाई अगस्त में की गयी है तो प्रथम कटाई अक्टूबर नवम्बर में करे। फसल की कटाई जमीन से 10–15 सेमी की ऊँचाई पर करे। दूसरी कटाई प्रथम कटाई के 60–70 दिनों के बाद करे। एक वर्ष में तीन से चार कटाईयॉ की जा सकती है। कटाई के बाद 3–4 दिनों तक पतो को छाया में सुखाते है।

उपजः– स्टीविया बहुवर्षीय फसल है इससे 4–5 वर्ष तक उत्पादन मिलता रहता है। प्रथम एवं द्वितीय वर्ष में उत्पादन कम मिलता है तथा तीसरे एवं चौथे वर्ष में अधिकतम उत्पादन होता है। एक हैक्टेयर क्षेत्र से प्रतिवर्ष 200–300 क्विंटल हरा शाक प्राप्त होता है जो सूखकर 40–50 क्विटल रह जाता है।

भण्डारणः– स्टीविया की पत्तियों को सीधे खाद्य के रूप में उपयोग में लेते है इसलिए सफाई का विशेष ध्यान रखे सड़ी गली एवं खराब पत्तियों को पौधे से अलग कर दे तथा पौधो को साफ पानी में धोकर साफ करे। इसके बाद तनो से पत्तियों को अलग करके छाया में सुखा लेना चाहिए ध्यान रहे पत्तियॉ काली नही पड़नी चाहिए अन्यथा गुणवत्ता प्रभावित होगी। तने में ग्लूकोसाइड की मात्रा कम होती है जबकि पत्तियों में अधिक, इसलिए पत्तियों को ही उपयोग में लेते है। पत्तियों के सूखने के बाद इसको पीसकर पाउडर के रूप में तैयार करके हवा रहित प्लास्टिक में पैक करे या किसी डिब्बे में भरकर बाजार में इनके खरीददारों को बेच सकते है।

विपणनः– स्टीविया की पत्तियॉ भी सीधे क्रेता को बेच सकते है तथा इसको पाउडर बनाकर भी बाजार में बेचा जा सकता है। इसका बाजार भाव लगभग 125–150 रूपये/कि.ग्रा. है। इसका बाजार भाव इसमें पाये जाने वाले स्टीवियोसाइड एवं रेवॉडियोसाइड की मात्रा पर भी निर्भर करेगा। चूंकि अभी इसके संगठित बाजार का अभाव है इसलिए किसान इसके उचित लाभ से वंजित है। इसकी खेती विपणन की उपलब्धता सुनिश्चित होने पर ही करे, चूंकि यह अधिक पानी चाहने वाली फसल है, इसलिए पानी की उपलब्धता तथा वातावरणीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही इसकी खेती करे, क्योकि फसल पैदा तो की जा सकती है लेकिन परिस्थितियॉ अनुकूल नही होने पर अच्छे उत्पादन की आशा नही की जा सकती है।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

जैविक खेती में जैव उर्वरकों का महत्व

अर्जुन लाल ओला[1], सुरेश चन्द यादव[1], भागचन्द ओला[2] एवं राजेन्द्र ओला[3]

[1]विद्यावाच्स्पती छात्र, उद्यान विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर

[2]स्नातकोत्तर छात्र,पादप प्रजनन व आनुंवाशिकी विभाग, महाराणा प्रताप कृषि विश्वविद्यालय, उदयपुर

[3]स्नातकोत्तर छात्र, मृदा विज्ञान विभाग, सैम हिग्गिनबॉटम विश्वविद्यालय कृषि प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान संस्थान इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश

भारत एक कृषि प्रधान दश हैं। जिसकी अधिकतर जनसंख्या गांवो में रहती हैं जहां अनेक प्रकार के खाधान्नों का उत्पादन होता है। वास्तव में खाद्य पदार्थो का सीधा संबंध जनसंख्या से है। इस प्रकार जनसंख्या के बढ़ने के साथ साथ ये आवश्यक हो गया है कि खाद्यान्नों का उत्पादन भी बढाया जाए अतः घास के मैदान एवं जंगलों को काट कर भूमि को अधिक उपजाउ बनाया जा रहा है ताकि खाधान्नों की उत्पादकता को बढाया जा सके लेकिन प्रदुषण मृदा अपरदन जैसी समस्याएं सामने आ रही है। यदि हम पृथ्वी पर पाये जाने वाले पौधों की जैविक क्रियाओं का अध्ययन करें तो पौधों में दो मुख्य क्रियाए दिखाई देती है प्रथम प्रकाश संश्लेषण दृवितीय जैवकि नाइट्रोजन स्थिरीकरण। वास्तव में जीवमण्डल में पाए जाने वाले तत्वों में नाइट्रोजन मुख्य तत्व है जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बढाता है यह कृषि आर्थिक तन्त्र का प्राथमिक तत्व है। पौधों एवं जंतु सीधे ही नाइट्रोजन का उपयोग नहीं कर पाते है।

कृत्रिम उर्वरक में सबसे मुख्य नाइट्रोजन ही है। नाइट्रोजन उर्वरक का निर्माण सामान्य रूप से हैबर बोस प्रक्रम के द्वारा किया जाता है। जिसमें हाड्रोजन गैस उच्चतम ताप एव अत्यधिक उर्जा की आवश्यकता होती है। जैव उर्वरक एक जीवित उर्वरक है। जिसमें सूक्ष्मजीव है। जो भूमि में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन एवं स्वतंत्र नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते है। इनमें से बैक्टीरिया कवक नीलहरित शैवाल आजोला जल फर्न आदि है इस खाद में विशेष प्रकार के जीवाणु होते है। जो दलहनी पौधों की जड़ ग्रंथियों में वायुमण्डल से नाइट्रोजन तत्व लेकर समेट लेते हैं या फिर भूमि से अघुलनशील और स्थायी तत्व फास्फोरस को घुलनशील बनाकर उनकी उपलब्धता को बढ़ा देते हैं तथा कई पौधें वृद्व हारमोन्स के उत्पादन की गति बढाने में सक्षम होते है।

राइजोबियम जैव उर्वरक

राइजोबियम एक मुख्य जैव उर्वरक है। जो राइजोबियम लेग्यूमिनोसेरम नामक सहजीवी जीवाणु से तैयार किया जाता है। जीवाणु दलहनी फसलों के पौधों की जड़ों में मूलरोमों के द्वारा प्रवेश कर जाते है और कार्टेक्स में ग्रंथियां बना लेते हैं इन ग्रंथियों में उपसिति राइजोबियम नाइट्रोजन का भूमि में स्थिरीकरण करते हैं। राइजोबियम जीवाणु खाद का उपयोग मुख्य रूप से दलहनी फसलें अरहर, उड़द मूंग चना सोयाबीन, मूंगफली मटर आदि में किया जाता है। फलीदार फसलों की प्रारंभिक अवस्था में डाली गई 20 से 25 किलो प्रति हैक्टेयर उर्वरक नत्रजन मात्रा को छोडकर फसल का लगभग पूर्ण नत्रजन पोषण इस जीवाणु द्वारा प्रदान किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि दलहनी फसलों की प्रारंभिक अवस्था में फसल को नत्रजन की 20 से 25 किलो मात्रा प्रति हैक्टेयर के रूप में पूर्ति करें। दलहनी तिलहनी की फसलों में इस जैव उर्वरक के हस्तेमाल से लगभग 50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है।

प्रयोग विधि

एक लीटर पानी में 125 ग्राम गुड़ का घोल बनाकर ठण्डा करें व इसमें एक पैकेट राईजोबियम कल्चर को मिला दें। अब इस मिश्रण को बीज की पर छिडकें एवं इसे स्वच्छ हाथों से इस प्रकार मिलाये की प्रत्येक बीज पर इसकी एक समान परत आ जावें। सामान्यतया 250 ग्राम राइजोबियम कल्चर 10 से 15 किलोग्राम बीज उपचारित करने के लिए पर्याप्त होती है। उपचारित बीजों को किसी साफ बोरी या फर्स पर फेलाकर

छायादार जगह पर सूखा कर तुरन्त बुआई करना चाहिए। खड़ी फसल में राइजोबियम कल्चर का उपयोग करने के लिए यदि पूर्व में इसका उपयोग नहीं किया गया है तो एक पैकेट कल्चर को 20.25 किलोग्राम बारीक मिटटी या कम्पोस्ट में मिलाकर इस मिश्रण को हाथ से पौधों के आसपास दें एवं बाद में गुडाई कर मिटटी में मिलाकर सिंचाई करें।

एजोस्पाइरिलम

भारत में दलहनी एवं तिलहनी फसलों के अलावा मोटा अनाज जैसे मक्का, ज्वार अन्य बीज वाली फसलें उगाई जाती है। इन फसलों द्वारा लगभग 90 प्रतिशत भूमि में उर्वरकों का उपयोग पूरी तरह से नहीं होता है। क्योंकि इस भूमि में प्रकृति में मृतजीवी जीवाणु पाये जाते है। जो भूमि में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते है। यह असहजीवी जीवाणु मृदा में स्वतंत्र रूप से निवास करते हुए वायुमण्डलीय नत्रजन को इकटठा कर पौधों को देता है। यह कल्चर उन फसलों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं। जिन्हे जल भराव वाली या अधिक नमीयुकत भूमि में उगाया जाता है विभिन्न शोध परिणामों से यह भी ज्ञात हुआ है कि धान रोपाई से पहले एजोस्पाइरिलम और पी.एस.बी. के घोल से रोपा धान की जड़ को निवेशित करना मृदा निवेशन की अपेक्षा अधिक लाभप्रद है। जड़ निवेशन में कल्चर की मात्रा कम लगती है तथा उपज में वृद्वि अधिक होती है। एजोस्पाइरिलम द्वारा धान रोगी कीटो कृटकी एवं छोटे बीज वाली फसलें लाभानिवत होते है।

एजोटोबेक्टर

एजोटोबेक्टर अतिसूक्ष्म जीवाणु हैं। जो खाद्यान फसलों में नत्रजन स्थिरीकरण करने का कार्य करते हैं।यह वायुमण्डल की नत्रजन को स्थिर करके पौधों के लिए इस तत्व की उपलब्धता के साथ साथ यह जीवाणु इण्डोल ऐसिटिक अम्ल, जिब्रेलिक अम्ल जैसे वृद्वि हार्मोन्स आदि को उत्सर्जित करके बीजो के अंकुरण एवं जमाव पर अच्छा प्रभाव डालते है।

पी.एस.बी.

भूमि में बैक्टीरिया एंव कवक अनके फास्फोरस युकत यौगिकों का संश्लेषण करते है। पौधों की जड़ो में कवक भी पाये जाते हैं इसको माइकोराइजा कहते हैं इन माइकोराइजा के कारण जड़ों में फास्फोरस का निर्माण होता रहता है।ये जीवाणु कार्बनिक अम्लों का उत्पादन करते हैं जो अधुलनशील फास्फोरस को घुलनशील फास्फोरस बनाने में सहायक होते है।

नीले हरे शैवाल

मुख्य सिपसीज ऐना. बीना नारस्टाक युलोसिस है। नीले हरे शैवालो के जैव उर्वरक धान एवं केला की खेती के लिए अति उत्तम हैं । जैसा कि इसके नाम से विदित होता है कि यह नीले हरे रंग की होती है जो वायुमण्डलीय नत्रजन का स्थिरिकरण कर लगातार नत्रजन प्रदान कराती है। जैव उर्वरक रायायनिक उर्वरक का विकल्प नहीं पूरक है यह उन मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय कृषकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। जो रासायनिक उर्वरकों का उपयोग महगा होने के कारण उचित मात्रा में नहीं कर पाते है।

ऐजोला

ऐजोला एक जल फर्न है इसका उपयोग जैव उर्वरक के रूप में करते हैं इसके उपयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती हैं ऐजोला धान की फसल के लिए उपयोगी है यह अम्लीयता शुष्कता एवं बीमारीयों की प्रतिरोधिकता को सहन कर सकते है। ऐजोला पानी पर तैरती हुई एक फर्न या काई होती है जिसका रंग गहरा लाल या कत्थई होता है। धान के खेतों में यह अक्सर दिखाई देती है। छोटे छोटे पोखर या तालाबों मे जहां पानी एकत्रित होता है वहा पानी की सतह पर यह दिखाई देती है। ,

जैव उर्वरको के लाभ

- ये फसल की पैदावार को 20–30 प्रतिशत बढ़ाते है।
- ये रासायनिक नत्रजन व फास्फोरस की 25 प्रतिशत मात्रा को प्रतिस्थापित करते है।
- पदपों की वृद्वि को बढाते है।
- ये मृदा को जैविक रूप से सक्रिय बनाते है
- ये मृदा की प्राकृतिक उत्पादकता को संरक्षित करते हैं
- ये सूखे व कुछ मृदा जनित रोगों से फसल का बचाव करते है।

सावधानियॉ

- जीवाणु खाद को पैकेट पर लिखी फसल के लिए ही पैकेट पर अंकित अन्तिम तिथि से पूर्व प्रयोग करें।
- जीवाणु खाद को गर्मी तथा धूप से बचाकर रखें एवं इसका भण्डारण ठंडे स्थान पर करे।
- पैकेट पर लिखे निर्देशों का पालन करें।
- जीवाणु खाद को रासायनिक उर्वरकों एवं दवा के साथ नहीं मिलाना चाहिए।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

एलोवेरा की वैज्ञानिक खेती

सुरेश चन्द यादव[1], दीपिका शर्मा[2] ,व ओम प्रकाश प्रजापत[3]

1,2 विद्यावाच्स्पती छात्र, उद्यान विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर जयपुर
3 विद्यावाच्स्पती छात्र, शस्य विज्ञान विभाग, कृषि अनुसंधान केन्द्र दुर्गापुरा जयपुर

घृत कुमारी या एलोवेरा, जिसे क्वारगंदल, या ग्वारपाठा के नाम से भी जाना जाता है, एक औषधीय पौधे के रूप में विख्यात है। इसकी उत्पत्ति संभवतः उत्तरी अफ्रीका में हुई है। इसे सभी सभ्यताओं ने एक औषधीय पौधे के रूप मे मान्यता दी है । यह मूलतः दक्षिणी अफ्रीका का पौधा है जो सोलहवीं शताब्दी में भारत में आया। यह दो फुट ऊंचा पौधा होता है ,पौधा बिना तने का या बहुत ही छोटे तने का गूदेदार और रसीला होता है। इसकी मांसल पत्तियाँ 12 से 15 इंच लम्बी होती हैं तथा पौन इंच मोटी होती हैं, जिनका रंग हरा, हरा–स्लेटी होने के साथ कुछ किस्मों मे पत्ती के ऊपरी और निचली सतह पर सफेद धब्बे होते हैं। पत्ती के किनारों पर भी सफेद छोटे कांटो की एक पंक्ति होती है। गर्मी के मौसम में पीले रंग के फूल उत्पन्न होते हैं। यही पत्तियाँ दवा के रूप में प्रयोग की जाती हैं । इन्हें काटने पर पीले रंग का रस निकलता है जो ठंडा होने पर जम जाता है जिसे मुसब्बर ,कुमारीसार,एलोज एलुआ, सिब्र आदि नामों से जानते हैं । भारत में ग्वारपाठा या घृतकुमारी हरी सब्जी के नाम से प्राचीनकाल से जाना जाने वाला कांटेदार पत्तियों वाला पौधा है, जिसमें रोग निवारण के गुण भरे पड़े हैं। आयुर्वेद में इसे घृतकुमारी की श्उपाधिश् मिली हुई है तथा महाराजा का स्थान दिया गया है। औषधि की दुनिया में इसे संजीवनी भी कहा जाता है।

प्रजातियाँ

विश्व में इसकी 275 प्रजातियाँ पायी जाती हैं। किंतु एलो बार्बेदेंसिस मिल ,एलो बेर तोर्न एक्स लिन्न ,एलो फोरेक्स मिलर ,एलो पैरीबेकर, चाइनीज बेकर ,लिन्त्रोसिस कोईंग बेकर ही व्यावसायिक तथा औषधीय दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

कृषि

घृत कुमारी (एलोविरा) एक सजावटी पौधे के रूप मे कम से कम जगह में, छोटे–छोटे गमलों में आसानी से उगाया जा सकता है। आजकल घृत कुमारी की खेती एक बहुत बड़े स्तर पर एक सजावटी पौधे के रूप में की जा रही है। अलो वेरा को आधुनिक उत्पादक इसके औषधीय गुणों के कारण उगा रहे हैं। इसकी सरसता इसे कम वर्षा वाले प्राकृतिक क्षेत्रों में जीवित रहने में सक्षम बनाती है, जिसके चलते यह पठारी और शुष्क क्षेत्रों के किसानों मे बहुत लोकप्रिय है। घृत कुमारी हिमपात और पाले का सामना करने मे असमर्थ होता है। आमतौर पर यह कीटों का प्रतिरोध करने मे सक्षम होता है पर कुछ कीट जैसे मीली बग और एफिड कीड़ों के कारण पादप की वृद्धि में गिरावट आ सकती है। गमले मे पौधों के लिये बालुई मिट्टी जिसमे पानी का निकास अच्छा हो तेज खिली धूप की स्थिति आदर्श होती है। आमतौर पर इन पौधो के लिये टैराकोटा के गमले क्योंकि यह छिद्रयुक्त होते हैं और अच्छी गुणवत्ता की खाद की सिफारिश की जाती है। सर्दियों के दौरान घृत कुमारी सुषुप्तावस्था मे पहुँच जाती है और इस दौरान इसे बहुत कम नमी की आवश्यकता होती है। हिम या तुषार संभावित क्षेत्रों में पौधों को अन्दर या पौधाघर (ग्रीनहाउस) मे रखना अच्छा रहता है। सौंदर्य प्रसाधन उद्योग के लिये अलो वेरा जैल की आपूर्ति के लिये घृत कुमारी का बड़े पैमाने पर कृषि उत्पादन होता है। अगर आप इसकी खेती करना चाहते हैं तो एक एकड़ खेत में 28000 / की लागत लगाकर चार साल तक 30000/–सालाना कमा सकते हैं ।

मानव उपयोग

इसके जैल का प्रयोग व्यावसायिक रूप में उपलब्ध दही, पेय पदार्थों और कुछ मिठाइयों मे एक घटक के रूप में किया जाता है। माना जाता है कि घृत कुमारी के बीजो से जैव इंधन प्राप्त किया जा सकता है। भेड़ के कृत्रिम गर्भाधान मे वीर्य को पतला करने के लिये घृत कुमारी का प्रयोग होता है। ताजा भोजन के संरक्षक के रूप में और छोटे खेतों में जल संरक्षण के उपयोग मे भी आता है।

औषधीय उपयोग

इस मुसब्बर गूदे, में घी ,चीनी तथा दूध मिलाकर हलआ बनाया जाता है जिससे कमजोरी तो दूर होती ही है साथ ही योन'ाक्ति भी बढ़ती है। पेट में अल्सर होने पर इसके गूदे को खाली पेट खाने से लाभ होता है। अगर खूनी दस्त हो रहा है तो गुदे में चीनी तथा जीरा मिलकर खा लें।
जलने पर, कटने पर, अंदरूनी चोटों पर एलोविरा अपने एंटीबैक्टेरिया और एंटीफंगल गुण के कारण घाव को जल्दी भरता है। यह रक्त में शर्करा के स्तर को बनाए रखता है।
त्वचा की खराबी, मुँहासे, रूखी त्वचा, धूप से झुलसी त्वचा, झुर्रियों, चेहरे के दाग–धब्बों, आंखों के काले घेरों, फटी एडियों के लिए यह लाभप्रद है। यह खून की कमी को दूर करता है तथा शरीर की रोग–प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। पेट की बीमारियों या अपच के लिए इसे अजवाईन मिलकर खाएं।

जोडों के दर्द में गूदे को गर्म करके प्रभावित स्थान पर लगाएं । जख्म या घाव पर गुदे को क्रीम की तरह लगा लें। बाल झाड़ रहे हो तो गूदे को सोते समय सर पर मालिश कर लें। इसका गूदा या जैल निकालकर बालों की जड़ों में लगाना चाहिए। बाल काले, घने–लंबे एवं मजबूत होंगे। यह करने से अनिद्रा के रोगी को भी लाभ होता है। अगर सर्दी या खांसी हो गयी हो तो ग्वारपाठा के पत्ते को भून कर उसका जूस निकाल लें और आधा चम्मच जूस एक कप गर्म पानी में मिला कर पी जाएँ ,तुंरत लाभ मिलेगा । पेशाब संबन्धी रोगों को दूर करने के लिए एक सप्ताह तक रोज सुबह गूदे को खाएं। इसके उपयोग से लीवर, महिला प्रजनान्गों तथा तंत्रिका–तंत्र में अद्भुत शक्ति का संचार होता है। इस पौधे में सुगर ख्मधुमेह, का भी खात्मा करने के गुण मौजूद हैं । 3–4 चम्मच रस सुबह खाली पेट लेने से दिन–भर शरीर में चुस्ती–स्फूर्ति बनी रहती है। आजकल सौन्दर्य निखार के लिए हर्बल कॉस्मेटिक प्रोडक्ट के रूप में बाजार में एलोविरा जैल, बॉडी लोशन, हेयर जैल, स्किन जैल, शैंपू, साबुन, फेशियल फोम, और ब्यूटी क्रीम में हेयर स्पा में ब्यूटी पार्लरों में प्रयोग हो रहा है

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

जैव उर्वरक एवं प्रयोग विधियाँ

जितेन्द्र कुमार शर्मा[1], चेतन कुमार जांगिड[2], सोमेन्द्र मीणा[3], देवकी नन्द शर्मा[4] और अशोक कुमार मालव[5]

[1,2] कृषि रसायन एंव मृदा विज्ञान विभाग, [3]उद्यान विज्ञानं विभाग, [4]शस्य विज्ञानं विभाग और [5]पादप प्रजनन एव आनुवंशिकी विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय उदयपुर

मृदा उर्वता के प्रबंधन और पोषक तत्वों की निरंतर उपलब्धता बनाये रखने हेतु जैव–उर्वराकों जैसे राइजोबियम, एजोटोबैक्टेर, एजास्पाइरिलम एवं फास्फेट घोलक जैव उर्वरक आदि अत्यन्त उपयोगी आदान है। स्थानीय जलवायु के आधार पर कुछ ऐसे सूक्ष्म जीवों द्वारा उर्वकर तैयार किये जा रहे हैं जो अलग–अलग स्थान और जलवायु में कारगर सिद्ध हुए हैं। अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि जहाँ रासायनिक खादों का उपयोग नहीं होता है वहाँ ये जीवाणु आदान अधिक प्रभावी हैं। अतः खेती की प्रत्येक अवस्था में तथा सभी फसलों में दनका प्रयोग करना सुनिश्चित करें।

जैव–उर्वरकों का चयन

जैव उर्वरकों के उपयोग से पूरा लाभ उठाने के लिये यह अतिआवश्यक है कि फसल के लिये सही जैव–उर्वरकों का चुनाव किया जाय और नत्रजन एवं फास्फोरस दोनों पोषक तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये नत्रजनीय एवं फॉस्फटिका जैव–उर्वरक समान मात्रा में एक साथ प्रयोग किये जाये।

राइजोबियम – दलहन एवं तिलहन फसलों जैसे सोयाबीन, मूंगफली, चना, मटर, मूंग, उड़द, मसूर में राइजोबियम के प्रयोग से पैदावार में 10–25 प्रतिशत की वृद्धि की जा सकती है। राइजोबियम की अनुक्रिया को मृदा दशा, मृदा उर्वरकता, टीके की गुणवत्ता आदि कारक प्रभावित करते है। दलहन फसलों में राइजोबियम दलहन सहजीवन फसल की 80 प्रतिशत नाइट्रोजन आवश्यकता पूरी कर सकता है। साधारणतः एक एकड़ क्षेत्रफल के लिए एक पैकेट राइजोबियम कल्चर की आवश्यकता होती है।

राईजोबियम प्रजाति	परपोषी फसलें
राईजोबियम ट्राईफोली	बरसीम
राईजोबियम मेलीलोटी	रिजका, मेथी, सैंजी
राईजोबियम लेग्यूमिनोसेरम	मटर, मसूर
राईजोबियम फेजियोलाई	राजमा, सेम, मोठ
राईजोबियम ल्यूपिनी	ल्यूपिनस
राईजोबियम जापोनिकम	सोयाबीन
राईजोबियम (ब्राडिराइजोबियम)	लेबिया, मूंग, उड़द, चना, अरहर, मूँगफली, इत्यादि।

एजोटोबैक्टर – एजोटोबैक्टर केला, पपीता, आलू, प्याज, टमाटर, भिण्डी, गन्ना, कपास, तंबाकू, मक्का, ज्वार, बाजरा, गेंहू, धान आदि फसलों में प्रयोग किया जाता है। एजोटोबैक्टर स्वतंत्र रूप से पौधों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते है। एजोटोबैक्टर नाइट्रोजन स्थिरीकरण के अतिरिक्त इन्डोन एसिटिक एसिड, जिब्रेलिक एसिड तथा विटामिन भी उत्पन्न करते है। एजोटोबैक्टर के उपयोग से उर्वरक तुल्यांकों के संदर्भ में विभिन्न फसलों को 15–20 किग्रा नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर मिलती है।

एजोस्पीरिलम – धान, गन्ना, मोटे अनाज, कपास, कद्दूवर्गीय एवं उद्यानिकी फसलों में इसका प्रयोग किया जाता है। एजोस्पीरिलम पादप जड़ों के साथ मुक्त सम्बन्ध में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता है। इसके प्रयोग से फसलों में 10–15 प्रतिशत तक की उपज में वृद्धि होती है। राइजोबियम की अपेक्षा एजोस्पीरिलम के प्रति फसल अनुक्रियाओं में समरूपता नहीं पाई गई तथा एजोस्पीरिलम के प्रति फसलों और उनकी किस्मों, स्थान, मौसम, फसल प्रबंधन पद्धतियों, जीवाणु विभेदों, और मृदा उर्वरकता का प्रभाव पड़ा।

नील हरित शैवाल – नील हरित शैवाल धान के लिए एक महत्वपूर्ण जैव उर्वरक है। यह एक विशेष प्रकार की काई (एलगी) होती है। इसकी विभिन्न प्रजातियां पाई जाती है। जिनमें नॉस्टाक, एनाबिना, आइलोसिस, साइटोलिया आदि प्रमुख है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण केवल उन्हीं शैवालों द्वारा किया जाता है जिनमें एक विशेष प्रकार की कोशिका (हेट्रोसिस्ट) होती है। इस प्रकार के शैवाल वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण तो करते ही है, साथ–साथ अनेक प्रकार के लाभकारी एवं आवष्यक रासायनिक पदार्थ जैसे विटामिन, वृद्धि नियामक, अमीनो अम्ल इत्यादि भी अवमुक्त करते है।

धान की फसल की रोपाई के एक से दो सप्ताह (7–0 दिन) के अंदर नील हरित शैवाल को पूरे खेत में बराबर मात्रा में बिखेर देना चाहिए। ध्यान रखने की बात यह है कि नील हरित शैवाल के प्रयोग के बाद कम से कम 15–20 दिन तक फसल में पानी भरा रहना चाहिए, जिससे शैवाल पूरे खेत में फैल सके। 10 किग्रा सूखा नील हरित शैवाल का चूर्ण एक हैक्टेयर धान की फसल के लिए पर्याप्त होता है तथा 100–200 किग्रा ताजी नील हरित शैवाल की आवश्यकता होती है। नील हरित शैवाल के प्रयोग से धान में 25–30 किग्रा उर्वरक नाइट्रोजन के बराबर नाइट्रोजन मिलती है और उपज में 10–15 प्रतिशत की वृद्धि होती है। इसके प्रयोग से मृदा में फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ती है तथा अम्लीय भूमि में आयरन की विशाक्ताता कम होती है।

फास्फोरस विलयकारी जीवाणु (पीएसबी वैम) – ये सूक्ष्म जीवाणु निम्न पीएच मान के कार्बनिक अम्ल छोड़ते है जिससे मृदा में उपस्थित अघुलनशील फास्फोरस घुलनशील फास्फोरस में परिवर्तित हो जाता है और फसल के लिए उपलब्ध होता है। इसके उपयोग से फास्फोरस की उपलब्धता में 10–30 प्रतिशत की वृद्धि होती है। पीएसबी कल्चर का प्रयोग धान, गेंहू, चना, मटर, आलू, गन्ना आदि फसलों में बहुत उपयोगी पाया गया है। वेसीकुलर आरबस्कुलर माइकाराइजी (वैम) जो पादप जड़ों और विशेष कवकों के सहजीवन का प्रकार है, फसलों में फास्फोरस की उपलब्धता और अधिग्रहण को बढ़ाता है।

जैव उर्वरकों की प्रयोग विधि – राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पीरिलम व फास्फोरस विलयकारी सूक्ष्म जीवों को निम्न विधियों से प्रयोग किया जा सकता है –

बीज उपचार विधि

बीज बोयी जाने वाली फसलों में मुख्यतः बीज उपचार विधि ही अधिक लाभकारी मानी गयी हैं इस विधि से जैव–उर्वरकों की मात्रा सबसे कम लगती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जैव–उर्वरक प्रयोग करने का सबसे सस्ता एवं उत्तम तरीका बीज उपचार ही है। इस विधि में बुवाई किये जाने वाले प्रत्येक 10 से 12 किलो बीज के लिये 200 ग्राम (एक पैकेट) नत्रजनीय जैव–उर्वरक एवं 200 ग्राम फॉस्फेट घोलक जैव–उर्वरक पर्याप्त है। लगभग 300–400 मि.ली. पानी में दोनो जैव–उर्वरकों को मिलायें और एक मिश्रण तैयार करें। इस मिश्रित घोल को धीरे–धीरे 10 किलो बीज के ढेर पर डालें और हाथ से तब तक उलटते पलटते जायें जब तक कि सभी बीजों पर जैव–उर्वरक की समान परत न चढ जाये। उपचारित बीजों का छाया में सुखायें और तुंरत बुवाई कर दें। यदि बोई जाने वाली भूमि अम्लीय है तो बीज उपचार के तुरंत बाद प्रत्येक 10 किलो बीज पर एक किलो खड़िया पाउडर या बुझा–चूना पाउडर छिडक कर अच्छी प्रकार बीजों के साथ मिला दें और यदि मिटी क्षारीय है तो 10 किलो बीज पर एक किलो जिप्सम पाउडर छिड़कें तथा तुंरत बुवाई शुरू कर दें।

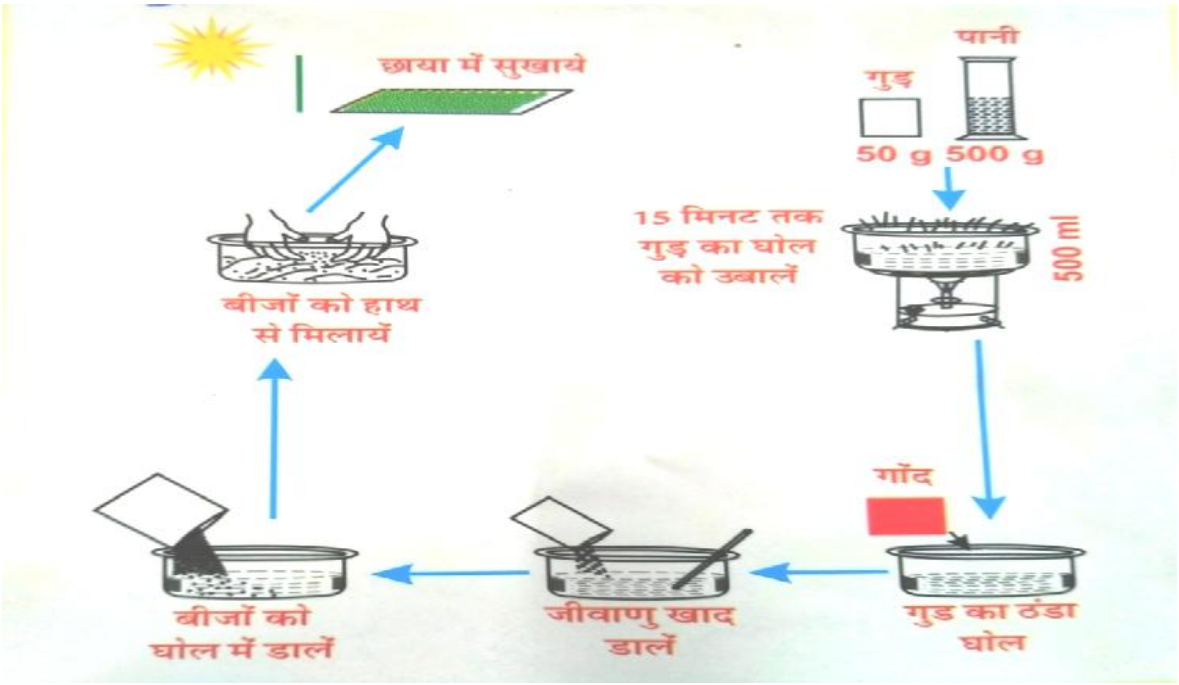

पौध (रोपणी) उपचार – धान, सब्जियों की पौध या गन्ना, आलू आदि के टुकड़े जिन्हें बीज के रूप में काम लिया जाना है, उनमें एक से तीन किग्रा (5–15 पैकेट) जैव उर्वरक को लगभग 50 लीटर पानी के घोल में 5–10 मिनट तक डुबोकर रोपाई करें।

भूमि उपचार – इस विधि में 100–125 किग्रा अच्छी सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट में 10–12 कि.ग्रा. जैव उर्वरक मिलाकर खेत की तैयारी के समय भूमि में मिलाएं। खड़ी फसल में भी जैव उर्वरक का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए सिंचाई से पहले या बाद में जैव उर्वरक को साफ व भुरभुरी मिट्टी में मिलाकर समान रूप से खड़ी फसल में बिखेर दें।

जैव उर्वरकों के लाभ

1. जैव उर्वरक पौधों के लिए आवश्यक सभी प्रमुख एवं सूक्ष्म पोषक तत्व प्रदान करते है।
2. इनके प्रयोग से मृदा में लाभकारी जीवाणुओं व केंचुओं की संख्या में वृद्धि होती है।
3. भूमि में स्थिर अघुलनशील फास्फोरस जीवाणुओं की सक्रियता से घुलनशील रूप में परिवर्तित होकर पौधों के लिए प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है।
4. इनके उपयोग से पौधों के लिए आवश्यक अनेक पादप वृद्धि नियामक भी मिलते है।
5. जैव उर्वरक रासायनिक उर्वरकों की तुलना में कम समय और कम खर्च में तैयार हो जाते है।
6. जैव उर्वरकों का प्रभाव धीरे–धीरे होता है परन्तु मृदा उर्वरकता लम्बे समय तक बनी रहती है जिससे रासायनिक उर्वरकों की तरह इन्हें बार–बार खेत में नहीं डालना चाहिए।
7. जैव उर्वरकों के प्रयोग से न सिर्फ रासायनिक उर्वरकों की खपत में कमी होती है बल्कि रासायनिक उर्वरकों की उपयोग क्षमता भी बढ़ती है।
8. जैव उर्वरकों का प्रयोग मानव स्वास्थर और पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से सर्वोत्तम है जो टिकाऊ खेती के महत्वपूर्ण कारक है।

जैव उर्वरकों के प्रयोग में सावधानियां

1. जैव उर्वरक के पैकेट पर लिखे दिशा–निर्देश का पालन अवश्य करें।
2. पैकेट पर लिखी अंतिम तिथि से पहले प्रयोग करें।
3. जैव उर्वरक ठंडे व सूखे स्थान पर रखें।

4. प्रत्येक दलहनी फसल के लिए राइजोबियम की प्रजाति भिन्न–भिन्न होती है। अतः इनका प्रयोग फसलवार करना चाहिए।
5. जीवाणु कल्चर से शोधित बीज को कभी भी धूप में नहीं सुखाना चाहिए, इससे जीवाणु मर जाते है।
6. जीवाणु कल्चर के बीजशोधन के समय या उसके बाद किसी भी प्रकार के रसायन से बीज उपचार नहीं करना चाहिए। रसायन के जहरीले प्रभाव से जीवाणु मर सकते है। अतः यदि रसायन से बीज उपचारित करना हो तो इसे कल्चर शोधन से पहले करना चाहिए।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

लौकी की उत्पादन तकनीक

अक्षय चित्तौड़ा, सुरेश कुमार तेली और डॉ. वीरेन्द्र सिंह
राजस्थान कृषि महाविद्यालय (म.प्र.कृ.प्रो.वि.) उदयपुर (राज.)

परिचयः–

लौकी की खेती पूरे भारत में की जाती है। इसके फलो का प्रयोग सब्जी, मिठाई व अचार बनाने में किया जाता है। पके फलों के खोल का प्रयोग पानी भरने के जग के रूप में व संगीत के यंत्र बनाने में किया जाता है। लौकी की सब्जी जल्दी से पचने वाली होती है। इसका प्रयोग मुख्य रूप से हृदय व पेट सम्बन्धित बीमारियों को ठीक करने के लिए करते है। लौकी के फलों का प्रयोग मुख्यतः हरी व मुलायम अवस्था में किया जाता है।

जलवायुः–

लौकी मुख्यतः ग्रीष्म ऋतु की फसल है, लौकी की खेती के लिए गरम व आर्द्र जलवायु की आवश्यकता रहती है। इसकी खेती के लिए 25 से 30 ^{o} सेन्टीग्रेड तापमान उपयुक्त रहता है। जब तापमान 35 ^{o} सेन्टीग्रेड से ऊपर हो जाता है तो पौधे में नर फूल अधिक आते है और इन फूलों में फल नही लगते है। लौकी की फसल पर पाले का प्रभाव बहुत ज्यादा पडता है। लौकी की खेती गर्मी व वर्षा दोनों ऋतुओं में की जाती है।

भूमिः–

लौकी की खेती विभिन्न प्रकार की भूमि में की जा सकती है, लेकिन उपजाऊ दोमट भूमि जहां जल निकास अच्छा हो वह भूमि उत्तम रहती है। इसकी खेती के लिए नदी के पास वाली मृदा भी काफी उपयुक्त रहती है क्योकि यह गहरी व उपजाऊ भूमि होती है जिससे इसकी जड गहराई तक जाती है और लम्बे समय तक उपज प्राप्त होती है।

किस्में:–

- **सम्राटः–** इसके फल लम्बे, हरे–सफेद और 30–40 सेमी लम्बाई के होते है। इसके फलों का वजन 700–800 ग्राम होता है। इसकी औसत उपज 42–43 टन प्रति हैक्टर प्राप्त होती है।
- **अर्का बहारः–** इसके फल मध्यम लम्बाई के, 1 किग्रा तक वजन होते है इसके फलों का चमकीला हल्का हरा रंग होता है। इसकी औसत उपज 40–50 टन प्रति हैक्टेयर प्राप्त होती है।
- **पूसा नवीनः–** इसका फल सिलेन्डर के आकार के होता है जिसका वजन 550 ग्राम होता है।

- **पूसा संदेशः–** इसके फल जल्दी प्राप्त होते है। इसके फल 55–60 दिन में प्राप्त हो जाते है। इसके फलों का आकार गोलाकार होता है और वजन 600 ग्राम तक होता है । औसत उपज 29–32 टन प्रति हैक्टेयर प्राप्त होती है।
- **पूसा मेघदूतः–** यह संकर किस्म है। इसके फल लम्बे और हल्के हरे रंग के होते है।
- **पूसा मंजीरीः–** यह संकर किस्म है। इसके फल गोल व हल्के हरे रंग के होते है।
- **पूसा सकंर 3ः–** यह किस्म ग्रीष्म व वर्षा ऋतु दोनों के लिए उपयुक्त है। यह बहुत जल्द परिपक्व हो जाती है और साथ ही इससे पूसा नवीन किस्म की तुलना में 40–45 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त होती है।
- **अन्य किस्मेंः–** पूसा समृद्धि, पूसा समर प्रोलिफिक लॉन्ग, पूसा समर प्रोलिफिक राउंड, पंजाब कोमल, कल्याणपुर हरी लम्बी, गुटका, पन्त संकर लौकी, नरेन्द्र रश्मि आदि।

भूमि की तैयारीः–

खेत की तैयारी के लिए पहली जूताई मिट्टी पलटने वाले हल से करते है और शेष 2–3 जुताई कल्टीवेटर से करके पाटा चला देते है।

बीज की मात्राः–

ग्रीष्म कालीन फसल के लिए 4.5 से 5.5 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है। वर्षाकालीन फसल के लिए 3 से 4 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होता है।

खाद एवं उर्वरकः–

खाद व उर्वरक का प्रयोग करने से पहले निकटतम प्रयोगशाला से मिट्टी की जांच करवा लेनी चाहिए। मिट्टी की जांच के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। लौकी की भरपुर पैदावार लेने के लिए निम्न मात्रा में खाद एवं उर्वरक (प्रति हैक्टयर) डाले।

गोबर की खाद – 200–250 क्विंटल

यूरिया – 150–175 किलोग्राम

सिंगल सुपर फॉस्फेट – 250–300 किलोग्राम

म्यूरेट ऑफ पोटाश – 100–130 किलोग्राम

गोबर की खाद को खेत में बिखेर कर मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई कर देवे व यूरिया की आधी मात्रा, सिंगल सुपर फॉस्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के पहले खेत में देवे। यूरिया की शेष रही मात्रा को दो बराबर भागों में बांटकर 4–5 पत्तियां निकलने पर व फूल निकलते समय टॉप ड्रेसिंग द्वारा पौधों को देनी चाहिए।

बुवाई का समय व विधिः–

ग्रीष्म कालीन फसल के लिए (जायद)– फरवरी – मार्च

वर्षाकालीन फसल के लिए – जून – जुलाई

लौकी की बुवाई 3 मीटर चौडी क्यारियों में 50 सेन्टीमीटर चौडी नाली बनाकर एक मीटर की दूरी पर की जाती है। 3–4 बीज को एक स्थान पर बोते है व जमाव के बाद एक जगह पर केवल एक या दो स्वस्थ पौधों को रखते है। बीजों को बोने से पहले 12 घण्टे तक पानी में भीगों कर रखते है जिससे बीजों का अंकुरण प्रतिशत बढ़ जाता है।

सधाई एवं कटाई–छंटाईः– लौकी की अच्छी तरह से कटाई–छंटाई व संधाई करने से उपज अधिक प्राप्त होती है। अच्छी तरह से संधाई करने से पौधे द्वारा सूर्य की रोशनी का अच्छी तरह से उपयोग हो पाता है।

लौकी की संधाई मुख्य रूप से बावर विधि से करते है इसके लिए सर्वप्रथम बेल को निश्चित ऊँचाई तक पहुंचाया जाता है इसके बाद बेल के शीर्ष से 10–15 सेन्टीमीटर नीचे से काट देते है। इसके बाद यहां से नई फूटान निकलती है उनमें से 2–3 शाखा को रखकर उन्हें बावर में फैलने देते है जब इस बेल में 4–5 फल बन जाये तब इसमें 3–4 शाखा रखकर काट देते है फिर इनमें से निकलने वाली फुटान को बावर में फैला देते है। साथ ही पौधे में लगी पुरानी व पीली पडी हुई पतियों को हटाते रहना चाहिए।

सिंचाईः–

ग्रीष्म काल में 4–5 दिन के अन्तराल में सिंचाई करते रहना चाहिए। वर्षा काल में आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए।

निराई–गुडाईः–

अधिक उपज के लिए भूमि को खरपरतवार विहीन रखना आवश्यक होता है । खेत में 2–3 बार निराई गुडाई करनी चाहिए।

उपजः–

लौकी के फलों को मुलायम अवस्था में डण्ठल सहित तोडना चाहिए। लौकी की खेती से 150–200 क्विंटल प्रति हैक्टयर उपज प्राप्त होती है।

प्रमुख कीटः–

लालड़ी या रेड पम्पकिन बीटिलः– यह सभी कद्दू वर्गीय सब्जियों का मुख्य कीट है। लाल रंग का यह कीट पौधों को प्रारम्भ से ही खाना प्रारम्भ कर देता है। इसकी सुडी भूमि के अन्दर जडो को भी नुकसान पहुंचाती है।

रोकथाम के लिए कार्बेरिल 5 प्रतिशत 20 किलों प्रति हैक्टयर की दर से भुरकाव करें अथवा ऐसीफेट 75 एस पी आधा ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिडके एवं 15 दिन में आवश्यकतानुसार दोहरावें। इसकी सुण्डियों से बचने के लिए 1.5 लीटर क्लोरपायरीफोस का एक हेक्टेयर क्षेत्र में बिजाई के एक महीने बाद सिंचाई के साथ उपयोग करे।

फल मक्खीः– यह फलों में प्रवेश कर वही पर अण्डे देती है और और अण्डों से लटें निकलकर गूदे को खाती है जिससे फल सड़कर खराब हो जाते है। इससे फसल को काफी नुकसाना पहुचता है। रोकथाम के लिए प्रभावित फलों को इकठ्ठा कर नष्ट कर देवे। डाईमिथोएट 30 ई सी 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिडकाव करे व आवश्यकतानुसार इसे 10–15 दिन बाद दोहरावें।

चैपा (एपीड)ः– यह कीट पौधों का रस चूसता है। इसकी रोकथाम के लिए 0.3 प्रतिशत डाइमिथोएड या 0.05 प्रतिशत इमिडाक्लोरप्रिड के 800 लीटर घोल का प्रति हैक्टयर छिडकाव करें।

रोगः–

चुर्णी फफूंदः– रोगी पौधों पर सफेद चूर्णी धब्बे दिखाई देते है। इस रोग की फंफूद से पत्तो, तनों और पौधों के दूसरे भागों पर फफूंदी की सफेद आटे जैसी परत जम जाती है। इस रोग की रोकथाम के लिए केरेथियॉन एल सी 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी को घोल कर छिडकाव करे व आवश्कतानुसर दोहरावे।

तुलासिता रोगः–

पतियों के उपरी भाग पर पीले रंग के धब्बे दिखाई देते है रोग की उग्र अवस्था में पतियां झडने लगती है। इस रोग की रोकथाम के लिए मैन्कोजेब का 2 ग्राम प्रतिलीटर पानी की दर से छिडकाव करें एव उचित फसल चक्र अपनायें।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

गुलाब के प्रसंस्कृत उत्पाद बनाकर कमायें अधिक लाभ

अर्जुन लाल रेगर[1] एंव जया कुमारी[2]

[1]उद्यान विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, एम·पी.यु.ए.टी., उदयपुर (राज.)

[2]पुष्प विज्ञान एवं भूदृश्य निर्माण, गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर

गुलाब एक झाड़ीनुमा बहु–वर्षीय पौधा है जो कि सुन्दर पुष्पों के लिए उगाया जाता है। भारत में प्राचीन काल से उगाया जाता है। तथा इसे फूलो की रानी कहा जाता है और इसको प्रेम का प्रतीक मना भी जाता है यह फूल व्यावसायिक दृष्टी से बहुत महत्त्व पूर्ण है एवं यह अंतराष्ट्रीय स्तर पर कट फ्लोवर्स के रूप में गुलाब का प्रथम स्थान है। तथा यह विभिन्न रंगों में पायें जाते है तथा इसकी मांग वर्ष भर बनी रहती है लेकिन शादीयों, क्रिसमस डे, वेलेंटाइन डे व अन्य त्योंहारो में इसकी मांग ज्यादा बढ़ जाती है और इससे खाद्य एवं पेय पदार्थ बनाये जाते है और इसके तेल की अंतराष्ट्रीय स्तर मांग है

प्रसंस्कृत उत्पाद–

गुलकंद– गुलकंद प्राचीनकाल से ही बहुत प्रसिद्व उत्पाद है। इसको बनाने के लिए गुलाब की पंखुड़िया और शक्कर बराबर अनुपात (1:1) मिलाई जाती है।

1 किलोग्राम गुलाब की पंखुड़िया से गुलकंद बनाने के लिए निम्न लिखित सामग्री चाहिए–

गुलाब की ताजा पंखुड़िया - 1 किलोग्राम

शक्कर - 1 किलोग्राम

पीसी हुई ईलाइची - 1 छोटा चम्मच

पीसी हुई सोंफ - 1 छोटा चम्मच

गुलकंद बनाने की विधि - गुलाब की ताजी व खुली पंखुड़िया ले और इन्हें काँच की बड़ी मुहँ की बोतल में डाले फिर अब चीनी डाले फिर और फिर पंखुड़िया डाले और फिर अब चीनी इस तरह से पूरी बोतल भरे और पीसी हुई ईलाइची और सोंफ इसमें सुगंध के लिए मिला दवे इसके बाद धूप में 8–10 दिन के लिए रख देवे और बीच–बीच में बोतल में भरी पंखुड़ियों और शक्कर को हिलाते रहे और फिर चीनी पानी छोड़ने लगेगी। फिर चीनी एवं पानी में डूबी पंखुड़िया गलने लगेगी जब पूरी तरह से जाएगी तो गुलकंद तैयार हो जायेगा

उपयोग- गुलकंद एक आयुर्वेदिक टोनिक है गुलकंद का नियमित सेवन करने से पित्त के दोष दूर होते है तथा इससे कप में राहत मिलती है गर्मियों के मोसम में गुलकंद का सेवन करने से ठण्डक महसुस होती है और यह रक्त शुद्व, कील मुहासे एवं आलस्य दूर करता है इसके साथ ही मुह छाले भी ठीक करता है।

गुलाब शरबत - शरबत बनाने के लि, निम्न लिखित सामग्री चाहिए–

गुलाब की पंखुड़ियॉ	- 250 ग्राम
शक्कर	- 1 किलोग्राम
नीम्बू	- 100– 150 ग्राम
चुकुन्दर	- 100 ग्राम
तुलसी की पत्तियॉ	- 15–20
हरे धनिये की पत्तियॉ	- 15–20
पुदीना की पत्तियॉ	- 10–12
ईलाइची	-8–10

गुलाब शरबत

बनाने की विधि– इसे बनाने के लिए गुलाब की पंखुड़ियों को सबसे पहले गर्म पानी में रखे और किसी भी स्टील बर्तन में 2 कप पानी ले कर गर्म करे गुलाब की पंखुड़ियॉ को हल्का क्रश कर लेना चाहिए और फिर इसको गर्म पानी में डालकर 5–6 घंटे के लिए रख देगे ताकि गुलाब की पंखुड़ियॉ पानी में अच्छी तरह से घुल जाये और फिर चुकुन्दर, तुलसी की पत्तियॉ, हरे धनिये की पत्तियॉ और एक कप पानी मिक्सी के जार में डालकर अच्छी तरह पीस ले और इसको स्टील के बर्तन में लेकर उबले ताकि सब्जियों का कच्चापन दूर हो जाये और इसे ठंडा होने के बाद इसे छान लेना चाहिए और शक्कर की आधी मात्रा की चाशनी बना देवें और आधी को पीस कर पाउडर बना लेवे फिर गुलाब का पानी, सब्जियों का रस, ईलाइची, सोंफ एवं नींबू का रस चाशनी में डालकर मिक्स कर लेवे और इस तरह यह तैयार हो जाता है और तैयार शरबत को बोतल में भरकर फ्रीज में एक महिने तक सुरक्षित रखा जा सकती है।

गुलाब जल - गुलाब जल बनाने के लिए ताजा गुलाब की पंखुड़ियों को गर्म पानी में पानी में उबले जब तक की पंखुड़िया पानी में पूरी तरह मिल ना जाये फिर उसको ठण्डा होने दे और बाद में गुलाब की पंखुडियो को छलनी से छान कर अलग कर ले और इसको काँच बोतल में भर दे। इस तरह गुलाब जल तैयार हो जाता है।

गुलाब का तेल– यह सबसे मंहगा एवं खुशबूदार तेल है। और एक किलो तेल बनाने के लिए लगभग 4000 किलो गुलाब को पंखुडियो की आवश्यकता होती है तथा इसको भाप आसवन विधि से निकला जाता है तथा इसका उपयोग इत्र, क्रीम, साबुन एवं लोसन आदि में खुशबू लाने के लिए बहुताय से किया जाता है।

गुलरोगन / गुलरोबन– इसे बनाने के लिए गुलाब की ताजा पंखुड़ियों के साथ तिल के बीजो को पिसा जाता है और तेल निकला जाता है। जिसका उपयोग बालो में लगाने और बॉडी मसाज के लिए किया जाता है।

पंखुड़ी– यह गुलाब की सुखी पंखुडियो से बनायीं जाती है एवं इसका उपयोग गर्मी के दिनों में पेय पदार्थ बनाया जाता है जिससे गर्मियों में ठंडक मिलती है।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

मक्का की उन्नत किस्मो की खेती

सिद्धार्थ कुमार पाटीदार एवं डा. बिनीता देवी
अनुवांशिकी और पादप प्रजनन बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी

मक्का एक प्रमुख खाद्यान्न फसल है। जिसे भुट्टो से अलग कर दानो के रूप में प्राप्त किया जाता है। यह भारत सहित एशिया एवं विश्व में गेंहु तथा धान के पश्चात् सबसे अधिक उपभोग किया जाने वाला खाद्यान्न है। इसलिए मक्का को "खाद्यान्नों की रानी" के नाम से भी जाना जाता है। भारतवर्ष में मक्का की फसल तीनो ऋतुओ में ली जाती है। खरीफ तथा रबी ऋतु में मक्का मुख्यतः मध्य भारत तथा बिहार में उगाया जाता है। तथा जायद ऋतू की फसल मुख्यतः उत्तर भारत में ली जाती है। भारतवर्ष में प्रमुख रूप से खरीफ की ऋतु में मक्का का उत्पादन लिया जाता है। परन्तु पिछले कुछ वर्षो में रबी ऋतु में भी देश के कुछ राज्यों में मक्का का अच्छा उत्पादन लिया जाने लगा है। रबी ऋतू में मक्का की खेती मुख्य रूप से बिहार राज्य में की जाती है। इसके साथ ही देश के अन्य राज्यों जैसे– उ.प्र., म.प्र., गुजरात, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, पंजाब, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा तमिलनाडु में भी शीत मक्का की खेती की जाती है।

रबी मौसम में मक्का के उत्पादन हेतु भौगोलिक कारक :–

(1) तापमान :– 22–30 °C तथा 7–9 घंटो का सुर्य प्रकाश ।**(2) मिट्टी** :– अच्छे जल निकास वाली, कार्बनिक पदार्थो तथा पोषक तत्वों से युक्त बलुई दोमट मिट्टी ।**(3) वर्षा** :– 100mm से अधिक ।**(4) जलवायु** :– ऊष्णकटिबंधीय से शीतोष्ण जलवायु ।

उन्नतशील प्रजातिया :– (H – Hybrid, C - Composite)

- **बिहार** :– राजेन्द्र हाइब्रिड –1,2 , प्रो–311, बायो–9681, सीड टेक–2324, 30V92, 900M "C" - हेमंत, सुवन, लक्ष्मी
- **उ.प्र.** :– PHM –3, बुलंद, प्रो एग्रो – 4212, प्रो–311, बायो–9681, NK–61, सीड टेक–2324, HM–8
- **म.प्र.** :– प्रो–311, बायो–9681, सीड टेक–2324
- **गुजरात** :– "H"– प्रो–311, बायो–9681, सीड टेक–2324, "C"& GM–3, गंगा सफेद–2
- **महाराष्ट्र** :– प्रबल, प्रो–311, बायो–9681, सीड टेक–2324, 30V92, 900M

पौध अंतरण एवं बीजदर :– रबी ऋतु के मक्का को 18–20 c.m. पौध से पौध तथा 60 c.m. पंक्ति से पंक्ति के हिसाब से बुआई करने पर लगभग 90,000 पौधे **/** है. की दर से लगाये जा सकते है। जिसके लिए 20–22 Kg बीज **/** है. की दर से पर्याप्त होता है।

बीज उपचार :– बुआई से पूर्व बीजो को निम्न कवकनाशी एवं कीटनाशको से उपचारित कर लेना चाहिए।

कीटनाशी / कवकनाशी	*मात्रा / kg बीज*
Bavistin + Captan (1:1)	2.0g
Apran 35 SD	4.0g
Captan	2.0g
Imidachlorpit	4.0g

बुआई का समय एवं विधि :–

राज्य	*बुआई का उपयुक्त समय*
बिहार	20 Oct. - 15 Nov.
उ.प्र.	20 Oct. - 15 Nov.
म.प्र.	15 Oct. - 15 Nov.
गुजरात	15 Oct. - 15 Nov.
महराष्ट्र	20 Oct. - 15 Nov.

देशी हल के द्वारा एक या दो गहरी जुताई कर तथा सिंचाई कर, अच्छी प्रकार से तेयार किये हुए खेत में 4–5 c.m. गहराई में बीज की बुआई करना अच्छा माना जाता है। इसके अतिरिक्त नर्सरी में पौध तैयार कर खेत में ट्रांसप्लांटिंग के जरिये भी इसकी बुआई की जा सकती है।

संतुलित उर्वरको का प्रयोग :– 10 tonne FYM / hac. , 150–180 Kg 'N'] 70&80 Kg 'P_2O_5', 70&80 Kg 'K_2o'] 25 Kg '$ZnSo_4$' / hac. की दर से पर्याप्त माना जाता है। FYM का सम्पुर्ण भाग खेत तेयार करते समय, P, K तथा Zn का पूरा भाग बुआई के समय तथा N को छोटे छोटे 5 भागो में अलग–अलग अवस्थाओ में दिया जाता है।

(1) बुआई के समय – 20%

(2) 4 पत्ती अवस्था – 25%

(3) 8 पत्ती अवस्था – 30%

(4) नर मंजरी अवस्था – 20%

(5) दाना भरते समय – 05%

रबी मक्का के प्रमुख कीट, बिमारिया तथा निवारण :–

बिमारिया तथा निवारण

पालिसोरा रस्ट – मेंकोजेब @ 2 - 2.5 Kg/ltr (पर्णीय छिडकाव)

चारकोल रोट – संतुलित सिंचाई करना चाहिए, खेत में जल भराव नही होना चाहिए।

तुर्किकम लिफ ब्लाइट – जिनेब / मेनेब @ 2.5 – 4 Kg/ltr दर से पर्णीय छिडकाव 2 से 4 बार तक 8 से 10 दिन के अन्तराल में करना चाहिए।

किट तथा निवारण :– गुलाबी तना छेदक इसका प्रमुख किट है। इसके निवारण हेतु 2 स्प्रे 'क्विनोल्फोस' 0.05 % के, अंकुरण के 15 तथा 35 दिन बाद करना चाहिए।

निंदाई – गुड़ाई :– खेत में से 2 बार , पुष्पन तथा परिपक्वन अवस्था पर निंदाई दृगुड़ाई करना चाहिए। अवांछनीय तथा रोगग्रस्त पौधो को निकलकर बाहर फेंक देना चाहिए।

सिंचाई :– 4 – 6 सिंचाई सुविधानुसार करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर हलकी सिंचाई कर देना चाहिए। विशेषकर फूल व भुट्टे निकलते समय सिंचाई आवश्यक है।

फसल की कटाई तथा सुखाई :– फसल की कटाई 15% नमी की अवस्था पर की जाती है। यदि कृत्रिम सिंचाई की व्यवस्था हो तो कटाई 25 – 30% नमी पर की जाती है। भिन्न तथा रोगग्रस्त भुट्टो को अलग

कर, 10 – 12% तक नमी अवस्था तक सुखाकर दाने निकाल लिए जाते है। संसाधन के बाद बीज को बोरो में भरकर उचित दशाओ में भण्डारण किया जाता है।

उत्पादन :– 4-0 t / hac. (सभी आवश्यक कारको की उपस्थिती में)
5 & 7 t / hac. (विशेष परिस्थियो में)
2500 Kg / hac. (न्यूनतम उत्पादन)

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh ISSN:2456-2904

कैसे हो बीज सुरक्षित

राजकुमार फगोडिया[1], बाबूलाल फगोडिया[2] एवं रामचन्द्र चौधरी[2]
[1]श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय,जोबनेर एवं [2]राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान
ईमेल–fagodiyarajkumar@gmail.com

भारत एक कृषि प्रधान देश हैं जिसकी अधिकांश जनसंख्यां गांवों में रहती है और कृषि पर निर्भर है ५ एक किसान औसत 70 प्रतिशत अनाज भोजन, बीज, एवं बिक्री के लिये भण्डारित करते है और भण्डारण के दौरान, अनाज की गुणवत्ता और मात्रा दोनों में कमी आती है ५ इस गुणवत्ता को फसल कटाई के बाद बीजों को कम नमी और कम तापमान पर रखने से काफी समय तक रोका जा सकता है ५ लेकिन बीजों के भण्डारण के स्थान पर जहाँ अधिक नमी हो तो, बीज में कई प्रकार के कीट व कवकों का बीज पर आक्रमण हो जाता है ५ इससे बीजों की गुणवता को बहुत ज्यादा नुकसान होता हैं५ वैज्ञानिक रूप से प्रसंस्कृत बीज यदि लाते ले जातें समय सहीं देखभाल एवं भण्डारण नहीं किया जाये तो इसका प्रभाव बीजों के अंकुरण क्षमता पर भी पड़ता है ५ इसके कारण लगभग 10 प्रतिशत अनाज बर्बाद हो जाता हैं। जिसे अनाज भडारण की उचित विधियाँ अपना कर बर्बाद होने से बचाया जा सकता हैं।

भण्डार गृह के लिए महत्वपूर्ण बातें : बीज को भण्डारित करने से पहले निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए ।

1. भण्डारण के लिए स्थान का चुनाव :

किसी भी जगह बीज को भण्डारण करना है तो वह स्थान आस–पास के स्थान से ऊँचा होना चाहिए तथा उस स्थान पर पानी नहीं भरना चाहियें और वर्षा का पानी भी इक्कटा नहीं होना चाहिए । जहाँ दीमक का प्रकोप को हो वहा पर भण्डार गृह नहीं होने चाहिए । भण्डार गृह की दीवारों में किसी प्रकार की दरारे नहीं हो क्योंकि वे कीड़ों के प्रजनन का महत्वपूर्ण स्थान होता है । भण्डार गृह की खिडकियां बन्द होनी चाहिए तथा छाया वाले स्थान पर होने चाहिए ।दरवाजे बड़े होने चाहिए ताकि बीज निकालने एवं अन्दर करने में आसानी रहे ।

2. भण्डार गृह की सफाई :

भण्डार गृह की सफाई समय समय पर करते रहना चाहिए । भण्डार गृह में खाली स्थान (बोरियों के अलावा) की सप्ताह में एक बार तथा बोरियों की एक माह के अन्तराल पर सफाई करनी चाहिए । दीवारों एवं छत की गंदगी दिखते ही सफाई करनी चाहिए तथा कचरे को जला देना चाहिए । उपरोक्त दर्शायी गई विधियों व सावधानियों का प्रयोग करने के बाद भी, कीट लगने पर विभिन्न प्रकार के रसायनों का उपयोग भी किया जा सकता है ।

3. गेहूँ, जौ, बाजरा के बीज की सुरक्षा के लिऐ कीटनाशक का प्रयोग :

डेल्टामेथ्रिन 4 मि.ली. को आधा लीटर पानी में मिलाकर प्रति 100 किलोग्राम बीज की दर से सीड ड्रेसर में मिलाकर एवं बीज को अच्छी तरह सुखाकर बोरियों में एक साल तक कीट रहित भंडारण किया जा सकता है । नीम एवं पलास के तेल (अखाद्य तेल) का 5 मि.ली.प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपयोग कर गेहूँ के बीज को एक वर्ष तक घुन से सुरक्षित किया जा सकता है ।

4. दलहन बीजों के लिए कीटनाशक का प्रयोग:

थायरम 2.5 ग्राम प्रति किलो का उपयोग कर बीज को धौरा कीट से सुरक्षित रखा जा सकता है । चने के बीज को मूंगफली या सरसों के तेल से 10 मि.ली.प्रति किलो की दर से उपचारित कर धौरा कीट के प्रकोप से सुरक्षित रखा जा सकता है । बोरियों पर डेल्टामेथ्रिन 2.5 डब्लू. पी. या 125 पी. पी. एम. से अच्छी तरह छिडकाव कर सुखा लेना चाहिए । फिर इनमें बीज भरकर रखने से 6 महीनें तक कीड़ों से सुरक्षित रखा जा सकता है । मूंग के बीजों को थायोमिथाक्सम 70 डब्लू. एस. 2.8 मि.ग्रा. की दर से डेल्टामेथ्रिन 2.5 डब्लू.

पी. 40 मि.ग्रा. प्रति किग्रा की दर से उपचारित करने पर उनका भण्डारण जूट की बोरियों में 9 महीनें तक सुरक्षित रखा जा सकता है ।ओर बीजों की अंकुरण क्षमता भी बरकरार रहती है ।

5. कपास के बीजों का भण्डारण :

कपास के बीजों में छुपी हुई गुलाबी सूंडी को नष्ट करने के लिये, बीजों को धूमित करने हेतु 40 किलो ग्राम बीज में एल्युमीनियम फास्फाईड की 3 ग्राम मात्रा में मिलाकर उसे हवा रोधी बनाकर 24 घंटे तक बन्द रखने के बाद भण्डारण करे । धूमित करना संभव न हो तो तेज धुप में बीजों को पतली तह के रूप में फैला कर 6 घंटे तक तपन देवें एवं बाद में भण्डारण करे ।

6. भण्डारण के लिए 700 गेज पोलिथीन बेग का प्रयोग :

इसमें सब्जी फसलों जैसे मिर्च, प्याज आदि का सुरक्षित भण्डारण किया जा सकता है । लेकिन 700 गेज पोलिथीन का ही प्रयोग करें एवं बैग में भरने से पूर्व बीज पूरी तरह सुखा होना चाहिए (नमी 5 प्रतिशत या 5 से कम)। बीजों को कीट रहित करने के लिए फ्यूमिगेशन पद्धति का प्रयोग करें ।

फ्यूमिगेशन :– सेल्फास की गोली 3 ग्राम प्रति घन मीटर भण्डारण जगह की दर से हवा बन्द भण्डारण ग्रहों का फ्यूमिगेशन करना चाहिए । ऐसा करने पर बीज एक सप्ताह में कीट रहित हो जायेगा ।7. अन्य फसलों के

बीज भण्डारण में सावधानियां :

खलिहान से बीज को अच्छी तरह से सफाई के बाद ही भंडारण करना चाहिऐ । बीज में नमी की मात्रा 8 से 9 प्रतिशत होनी चाहिऐ । भण्डार गृह में विण्डो ट्रेप व ग्रेन प्रोब का इस्तेमाल करके कीड़ों के आगमन का पता लगाकर उसको सही उपचार करना चाहिए । 40– 50 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान पर काले पोलिथीन के ऊपर बीजों को 8–10 घंटे सुखाने पर भण्डारण कीटों का प्रकोप नष्ट हो जाता है । उसके बाद बीजों को 700 गेज पोलिथीन में सील करके रख देना चाहिए ५ इससे भण्डारण में कीटों का प्रकोप नहीं होता तथा अंकुरण क्षमता भी प्रभावित नहीं होती है ।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

टिन्डा की खेती केसे करे

डॉ बी. एल. जाखड़ एव पीयुस सरस
Pulse Research Station, Sardarkrushinagar Dantiwada Agricultural University,
S.K.Nagar-385 506, Dist. Banaskantha, Gujarat
E- mail:bjakhar@rediffmail.com

वानस्पतिक नामः सिट्रूलस वल्गेरिस वेरायटी फिस्टूलोसस (*Citrullus vulgaris* fistulesus)
कुल : कुकुर्बिटेसी (Culurbitace) गुणसूत्र संख्या : 2n=24 उत्पति स्थान : उत्तरी भारत

टिण्डा एक वर्षीय बेल या लता होती है। यह पूरे भारत मे उगाया जाता है परन्तु मुख्य रूप से राजस्थान, पंजाब, हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश मे उगाते है। तरकारी के रूप मे खाए जाने की दृष्टि से ऐसे फल सर्वोतम रहते है इसे रसेदार या भरवां सब्जी के रूप में प्रयोग करते है। इससे मुरब्बा आचार बनाते है। टिण्डे का उपयोग सुखी खांसी तथा रक्त संचार को बढाता है।

जलवायु (climarte): टिण्डा एक गर्मी के मौसम की फसल है इसकी जलवायु सम्बन्धी आवश्यकताए लगभग तरबूज की तरह ही है परन्तु इसे अपेक्षाकृत कम लम्बा मौसम चाहिए। इसके बीज 27 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर अच्छी तरह अंकुरित होते है।

भूमि तथा इसकी तैयारी (soil and its preparation): टिण्डा सभि प्रकार की भूमि मे उगाया जा सकता है। परन्तु जीवाशयुक्त दोमट भूमि सर्वोत्तम सिद्ध होती है भूमि को 3.4 जुताईयां देकर अच्छी तरह भूरभरी बना लेते है।

किस्में (varieties):

अरका टिन्डा: यह अन्तशील किस्म उधान अनुसंधान संस्थान, बैंगलौर विकसित की गई है उसके फल गोल व हल्के रंग के होते है। यह ग्रीश्मकालीन अगेती फसल है।

बीकानेरी टिंडा: इसके फल गहरे हरे रंग के होते है फल आकार मे बडे होते है।

पंजाब टिंडा: यह मध्यम समय मे तैयार होने वाली किस्म है फल हरे रंग के होते है। तथा गुदा नरम होात है। इसके फल आकार मे बीकानेरी से छोटे होते है।

अन्नामलाई टिंडा: यह तमीलनाडु की किस्म है फल रंग के तथा मध्यम आकार के होते हैं

खाद एवं उर्वरक (manure and fertiizers):

टिण्डे की खेती के लिएस 100 से 150 क्विंटल गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट, नाइट्रोजन 40 कि.ग्रा. फास्फोरस एवं पोटास 40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टिर की दर से फिरिस की गयी है। गोबर कम्पोस्ट की खाद तथा फास्फोरस तथा पोटाष की मात्रा भूमि की तैयार के समय बाने के टीक पहले दी जाती है। तथा नाइट्रोजन की मात्रा फुल तथा बनते समय छिडकना चाहिए।

बोआई (sowing): इसकी उत्तरी भारत के मैदानो मे दो फसले ली जाती है पहली फसल को मध्य फरवरी से अप्रेल तक दूसरी फसल जून–जूलाई मे बोते है। इसकी खेती थालो मे या क्यारियो में करते है। 150 से 200 से.मी चौडाई की बनाते है दो क्यारियो के बीच 50 से 60 सेमी. की सिंचाई की नालिया छोडते है। 3 से 5 बीज एक स्थान पर बोते है बाद मे उनमे केवल दो पोधे बने रहने देते है।

बीज की मात्रा (seed rate): लगभग 4 से 5 कि.ग्रा. बीज एक हैक्टर के लिए प्रयास होते हैं

सिचांई एवं निराई–गुडाई (Irrigatrion and interculture): भूमि मे पर्याप्त नमी रखने से उपज उच्छी मिलती है। पहली सिंचाई बोने के तुरन्त बाद देनी चाहिए तथा इसके बाद आवश्यकता पडने पर 8 से 10 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। वर्षा होने पर सिंचाई की आवश्यकता नही होती है। खरपतवार नियंत्रण के लिए पहली सिंचाई गुडाई बाने के 30 दिन बाद मे करनी चाहिए तथा बाद मे आवष्यकतानुसार एक दो निराई गुडाई करते है।

तुडाई एवं उपज (picking and yield): जैसे ही बेल फेलना प्रारम्भ करती है फल आने लगते है। फलो को मुलायम अवस्था मे जब उन पर रोपें रहते हो उस समय तोड लेते है। फलो की, बेलो को बिना हानि पहुॅचाए, हल्का झटका देकर तोडा जाता हैं औसत उपज प्रति हैक्टर 80 से 120 क्विंटल तक होती है।

खीरा वर्गीय फसलो के रोग (Diseases of cucurbits):

चूर्णिल मिल्डयू (Powdery mildew): यह रोग एक फफुॅद एरीसाइफी सिकोरेसिएरम (Erysiphe cichoracearum) के द्वारा होता है। खीरा वर्गीय सभी फसले इससे प्रभावित होंती है। लेकिन करेला इस रोग से कम प्रभावित होता है। इस रोग मे पुरानी पत्तियो की निचली सतह पर सफेद धब्बे नजर आते है। धीरे–धीरे इन धब्बो की संख्या एवं आकार बढ़ जाता है। तथा बाद मे पत्तियो के दोनो ओर चूर्णिल वृदि दिखाई पडती है। ये पत्तियां पीली पड जाती है तथा इनकी सामान्य वृदि रूक जाती है। जब नई पत्तियो पर इसका आक्रमण होता है। तो ये हरियाहीन हो जाती है तथा पौधा मर जाता हैं इसके नियंत्रण के निम्न सुझाव दिये गये है।

1. रोगी पौधो को इक्ठठा करके जला देना चाहिए।
2. कदद एवं तरबुज मे गन्धक का चूर्ण 20 से 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुरकाते है। लेकिन तरबुज एवं खीरे मे गन्धक के चूर्ण से हानि होती है।
3. खरबुजा खीरा एवं अन्य फसलो के लिए केराथेन 0.2 प्रतिषत का छिडकाव या 25 से 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर केराथेन की बुरकरी बुरकते है।
4. रोग रोधी किस्मे उगानी चाहिए जेसे तरबूज की अकार्बनिक किस्म इस रोग से सहन करने की क्षमता रहती है।

मृदारोमिल फफुंदी (Downy mildew):

यह रोग स्यूडोपेरोनोस्पोरा क्युबेनसिस (pseudoperonospora cubensis ros) फफुॅद से डारा होता है। यह रोग खरबुजा, खीरा, तोरी, लौकी, करेला आदि को ज्यादा नुकसान पहुॅचाती है तथा कददू इस रोग से कम प्रभावित होता है। जबकि तरबूज मे यह रोगब लगता ही नही है। इसमे पत्तियों के उपरी भाग पर पीले धब्बे दिखाई पडते है। जबकि निचले भाग पर धब्बों का रंग बैंगनी सा होता है। इससे पत्तिया मर जाती है। पौधे की वृदि पर प्रतिकुल प्रभाव पडता है। इस रोग से निम्न लिखित उपाय अपनाने चाहिये।

1. फसल चक्र अपनाना चाहिए।
2. फसल कटाई के अवयेव को जला देना चाहिए।
3. डाइथेन जेंड–78(0.3प्रतिशत) या डाइथेन एम-45 (0.2प्रतिषत) का छिडकाव रोग के लक्षण दिखाई देते ही कर देना चाहिए। आवश्यकतानूसार छिडकाव को 8 से 10 दिन के अन्तराल पर दोहराना चाहिए।

एन्थ्रेक्नोज (Anthracnose): यह रोग कोलेटोट्रीकम लैजीनोरियम (collectotricham Lagenaniam elus) नायक फुफुंद के द्वारा होता है। सभि कउउूवर्गीय फसल इस रोग से प्रभावित होती है कददू तथा करेला कम प्रभावित होते है। इस रोग के लक्षण पौधे से विभिन्न भागो पर भिन्न होते है। पत्तियो की षिराओं पर धब्बे सबसे पहले दिखाई देते है जो धीरे –धीरे सम्पूर्ण पत्ती पर फैल जाते है। पत्तिया आक्रमण के बाद मर जाती है। तने पर लम्बे तथा अपनमि (कमचतमेमक) घटते पडते है। फलो पर छोटे–छोटे जल सहित अण्डाकार, गोल या लम्बाकार धब्बे पड जाते है। जो बढकर आपस मे मिल जाते है। जिससे फल सडने लगता है। वर्षा ऋतु मे इस रोग का आक्रमण भंयकर होता है। इस रोग की रोकथाम के उपाय निम्न है।

1. दो से तीन साल वाला फसल चक्र अपनाना चाहिए।
2. यह रोग बीजरोपित (seed borne) है अतः बीज का उपचार बेबिस्टीन या बेनलेट 2०5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से करला चाहिए।
3. डाइएथेन जेड– 78 (.02 प्रतिषत) या डाइएथेन एम 45 (0.02 प्रतिषत) का प्रति हैक्टर की दर से छिडकाव करना चाहिए।

कोणीय पत्ता दाग (Angulor leaf spot): यह रोग स्यूडोमोनास लेक्टाइमन्स (pseudomonas lachry man) नामक जीवाणु द्वारा होता हैं यह मुख्य रूप से खीरा, कददू तथा तरबूज पर आक्रमण करता है इससे पतियो ,तने एवं फलो पर छोटे–छोब्टे जलसिक धब्बे उभर आते है। पत्तियो के दाग उपरी सतह पर भूरे एवं निचली सतह पर चमकदार होते है। जो केवल षिराओ तक ही सीमित रहते है इसलिए कोणीय आकार ग्रहण कर लेते है तने तथा फलो के जलसित भागो पर सफेद जीवाणु निःसाव जम जाता है तथा फलो के पकने पर छिलको के निचे भूरी गलन पैदा होने लगती है। इसके बचाव के लिए निम्न उपाय सुझाये गये है।

1. बीज को मरक्यूरिक क्लोराइड (1:100) के घोल मे 5 से 10 मिनट के लिए डुबोते है बाद मे साफ जल से धोकर बोते है।
2. रोग ग्रसित पौधो को इक्ठठा करके जला देना चाहिए।
3. स्ट्रोमाइसीन 400 पी.पी.एम का छिडकाव करना चाहिए।
4. बौर्डक्स मिश्रण (Bordeaux mixture) एक प्रतिषत का छिडकाव करना चाहिए।

विषाणु रोग (virus diseases):

इसमे कई प्रकार के विषाणु आक्रमण करते है परन्तु अधिकांषतया खीरा मोजे विषाणु (Culumber mosaicvirù) का आक्रमण होात है इससे पैदा होने वाले लक्षण सबसे पहले वृदि कर रही षीर्ष कलिका के पास की पत्तियों पर दिखाई देते है पूरानी पत्तियो पर अंग्रेजी के वी (अ) के आकार के उत्तक क्षय के दिखाई पडते है। जो किनारो से प्रारम्भ होकर मदक थिरा तक जाते है। फलो पर हल्की मोटलिंग (mottling) से लेकर मस्सेदार वृदि तक दिखाई पडती है। और कभि–कभि फल बिल्कुल सफेद हो जाते है। इस दशा को व्हाइट पिकिल (white pickle) नाम दिया गया है। पौधे कभी– कभी मर जाते है। यह रोग मुख्य रूप से एफिड के द्वारा फैलता है। इसके नियंत्रण के लिए निम्न सुझाव दिये गये है।

1. रोगग्रस्त पौधो को जला देना चाहिए।
2. रोगरोधी किस्मो को उगाना चाहिए।
3. इसके वाहक एफिड को नष्ट करने के लिए थायोडान (thiodan) 0.1 प्रतिषत या मेटासिसटोम्स 0.1प्रतिशत का छिडकाव करना चाहिए।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

रबी की मुख्य फसलों में रोग फेलने के मुख्य स्रोत एवं नियंत्रण के प्रमुख उपाय

बाबूलाल फगोडिया, राम चन्द्र चौधरी एवं आर. एस. चौधरी
पीएच.डी शोधार्थी, राजस्थान कृषि महाविधालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय,उदयपुर–(राजस्थान)–313001
ई मेल: blfagodia25@gmail.com

भारत एक कृषि प्रधान देश है, एवं भारत की अधिकतर जनसंख्या गावों में निवास करती है। तथा कृषि पर निर्भर है । इस कारण आधुनिक भारत में कृषि का महत्व योगदान है, जिसके कारण सफल सस्य उत्पादन के लिए फसलों को रोगों, कीटों एवं खरपतवारों से सुरक्षा करना अन्य कृषि कार्यो की तुलना में अधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। पेस्टिसाइड एसोसिएशन ऑफ इंडिया के अनुसार कीट–पतंगों, बीमारियों एवं खरपतवारों से फसल के कुल उत्पादन का 35 से 40 प्रतिशत भाग नष्ट हो जाता है। यह हानि इस प्रकार दस हजार करोड़ रूपए प्रतिवर्ष तक पहुंच जाती हैं । अगर हम इस हानि को बचा ले तो हमारे देश में कभी भी आने वाले वर्षो में अन्न की कमी नहीं पड़ेगी । बीमारी, कीट–पतंगों व खरपतवारों द्वारा होने वाली हानि का प्रभाव केवल आर्थिक ही नहीं कुछ सामाजिक व राजनैतिक सम्स्याए भी अप्रत्यक्ष रूप से इस का कारण बनती है। अत: पौधों की उनके रोगों से सुरक्षा करना अतिआवश्यक है ताकि हमारा देश अन्नपूर्ति में आत्म निर्भर बन सके।

फसल रोगों के स्रोत: पादप रोगों को उनके फेलने के आधार पर निम्नलिखित भागो में विभक्त किया जा सकता है।

1-**बीजोढ़ पादप रोग:**–वह रोग जो बीजों के द्वारा फैलते है तथा इन रोगों के रोगजनक बीज के अन्दर प्रवेश कर जाते है और जब बीज का अंकुरण होता है तो ये रोगजनक भी सक्रिय हो जाते है और आगे चलकर पौधे में रोग पैदा कर देते है जैसे गेहूं एवं जौ का स्मट रोग ।

2- **मृदोढ़ पादप रोग:**– वह रोग जो मृदा से पौधों में लगते है इन रोगों के रोगजनक मृदा के अन्दर ही पड़े रहते है और जब बीज बोया जाता है तो उस समय अंकुरित पौधे पर आक्रमण कर देते है जैसे चने का विल्ट एवं जड़ गलन रोग ।

3- **वातोढ़ पादप रोग:**–कुछ रोगों के रोग जनक हवा के द्वारा फैलते है जैसे गेहूं एवं जौ की फसलों पर रोली रोग हवा द्वारा ही फसलों के स्वस्थ पौधों पर पहुंचते है।

4- **कीट वाहित पादप रोग:**– कुछ रोग कीटों द्वारा पोधों में फैलते है। ये कीट–पतंगे विषाणु रोग फेलाने में मदद करते है जैसे गेहूं एवं जौ का पीला मोजैक रोग ।

पादप रोगों के नियंत्रण के मूल सिद्धान्त:–विभिन्न परिस्थतियों में अनेक प्रकार की बीमारियों को नियंत्रण करने हेतु मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार है–

1- **बहिष्करण:**– इस विधि का मुख्य उद्देश्य नये रोगजनकों एवं बीमारियों का क्षेत्रों में प्रवेश को रोकना है । एक क्षेत्र से दुसरे क्षेत्र में बीजों या पौधों के अन्य भागो का निर्यात संगरोध कानून के द्वारा रोकते है । पादप निरोगिता सम्बंधी प्रमाण पत्र प्राप्त न होने पर, विदेशों से आयतित पौधों या पौधों के भागों को बंदरगाह पर प्रवेश करते ही नष्ट कर देना चाहिये।

2- **उन्मूलन:**–किसी फसल से रोग या किसी भी क्षेत्र से रोगाणुओं का पूर्णतया नष्ट करना, उन्मूलन कहलाता है। रोगों के उन्मूलन के लिये, रोगजनकों के जीवन चक्र, रोगजनको की सुषुप्वस्था, परपोषी पौधों के बारे में

जानकारी होना आवश्यक है । अनेक विधियों को सयुंक्त रूप से अपना कर किसी फसल को रोगों से मुक्त किया जा सकता है ।

फसलो में रोगों के नियंत्रण की मुख्य विधिया:

1-रोगी पौधों या पौधे के अंगो को नष्ट करना:– पौधों की बीमारियों को फसल में फेलने से रोकने के लिये आवश्यक है कि रोग–ग्रस्त पौधों या उनके अंगो को पूर्णतया नष्ट कर दिया जाये । गेहूं एवं जौ में स्मट रोग लगने पर रोगी पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिये । विषाणु से फसलो को बचने के लिये रोगग्रस्त पौधों को जला देना चाहिए ।

2- परती भूमि रखकर रोग नियंत्रण:–मृदा में फेलने वाली बीमारियों को लंबे सस्य–चक्र व परती खेत रखकर रोग जनको को नष्ट कर देते है जैसे कि भूरी पत्ती धब्बा रोग लगने पर, सस्य–चक्र में हेर–फेर करके रोकथाम कर सकते है ।

3- परपोषी पौधों को नष्ट करना:– पादपरोग–ग्रस्त मुख्य फसल परपोषी केअभाव में, खरपतवार परपोषीयों या अन्य जंगली पौधों पर अपना जीवन चक्र बनाये रखते है। उन्मूलन के लिये, इस प्रकार के परपोषी पौधों को नष्ट करना आवश्यक है ।

4- कृषि क्रियाऔ में परिवर्तन करके:– खेत की जुताई गहरी करके या बुवाई के समय में परिवर्तन करके, खाद की मात्रा सही समय पर प्रयोग करके एवं सही मात्रा में फसल की सिंचाई करके व जल निकास के अच्छी सुविधा करके, रोगजनको के प्रतिकुल वातावरण तैयार करते है । इस प्रकार रोग पर नियंत्रण कर लेते है इस विधि से चने का विल्ट रोग व मटर का जड़ गलन रोग देर से बुवाई करने से नियंत्रित होता है । गेहूं एवं जौ की अगेती बुवाई करने पर रोली रोग कम लगता है ।

5- पौधों के घावों का उपचार:–पौधों की कांट–छांट करते समय उत्पन्न घावों पर रोगजनक संक्रमण शीघ्र होने की संभावना होती है ऐसी परिस्थिति में विभिन्न रसायनों को कटे हुये भाग पर प्रयोग करते है । विभिन्न कवकनाशियो जैसे कापर सल्फेट और कैल्शियम कार्बोनेट के घोल एवं अलसी के तेल जैसे चिप–चिपे पदार्थो में मिलाकर घावों पर लगा देते है ।

6- रोगवाहक कीटों का नियंत्रण:– जब विभिन्न रोगों के पौधों पर संक्रमण कीटों द्वारा होता है तब इस प्रकार के कीटों का पता लगा कर उन्हें नष्ट करना आवश्यक होता है।

7- सफाई:– रोग–ग्रस्त पौधों के अवशेषों, ठुठों, रोगी शाखाओं आदि एकत्रित करके जला देने तथा खेत की गहरी जुताई करके निवेश द्रव्य को कुछ हद तक समाप्त किया जा सकता है ।

8- बीजों का सौर उष्णता एवं गर्म पानी से उपचार:– कुछ बीमारियां जो बीजों द्वारा फैलती है एसे बीजों को सूर्य की धूप में रख कर या गर्म पानी (निश्चित सीमा तक) में निश्चित समय पर रख कर रोगजनक को समाप्त कर सकते है । निम्नलिखित तालिका में विभिन्न फसलो में बीमारियों का गर्म पानी के उपचार से नियंत्रित किया जा सकता है ।

फसल का नाम	रोग का नाम	पानी का तापमान (^{0}C)	उपचार का समय (मिनट)
गेहूँ	अनावृत्त स्मट	50-55	10
जौ	अनावृत्त स्मट	50-55	10
सरसों	अल्टरनेरिया ब्लाइट	50	10

9-सौर उर्जा का प्रयोग रोगनाशक के रूप में:–पौधों की बीमारियों की रोकथाम के लिये मृदा का सूर्य विकिरण से उपचार सर्वप्रथम इजराइल के प्रसिद्ध वैज्ञानिक जे काटन ने 1981 में प्लास्टिक शीट (0.03 मि.मी) का मल्चिंग खेतों में करके भूमि में 5 से 10 से.मी गहराई तक मृदा के तापमान को सौर उर्जा द्वारा 6.9 डिग्री

सेंटीग्रेड तक बढ़ाया गया और इसके साथ–साथ खेतों में पानी दिया गया जिससे वाष्पन के द्वारा छोटी छोटी पानी के बूंदे प्लास्टिक शीट की निचली सतहों पर जमा हो जाती है, वह सूर्य की किरणों को वापस नहीं जाने देती है व बूंदो द्वारा अवशोषित उर्जा मृदा का ताप बढाती है । फलस्वरूप रोग उत्पन करने वाले कवक व कीटाणु काफी सीमा तक कम हो जाते है । मृदा ताप उपचार से बीज गलन, आद्र गलन, जड़ गलन, विल्ट व तना सडन आदि बीमारिया नियंत्रित की जा सकती है ।

10-बीमारियों का जैविक नियंत्रण:– बीजों के उपर, बुवाई पूर्व ट्राईकोडर्मा हरिजनम एवं ट्राईकोडर्मा विरिडी की परत चढ़ाने से टमाटर आदि में पीथियम, आद्र गलन आदि बीमारियों की रोकथाम सफलता पूर्वक की जाती है ।

11- रोग अवरोधी जातियों का बोना:– फसलों को रोगों के संक्रमण से बचाने के लिये, रोग अवरोधी जातियों को ही खेत में बोना चाहिए । वैज्ञानिक विभिन्न फसलों की अनेकों रोग रोधक जातियों का विकास कर रहे है। ये फसलों की किस्मे अनेक परीरक्षणों से गुजरने के बाद किसानों को वितरित की जाती है किसानों के लिये यह विधि सबसे सस्ती व फायदेमंद है ।

12- रसायनों का प्रयोग:– जब पादप रोग के रोगजनक बीजों पर चिपके होते है या मृदा कणों पर पाये जाते है या पौधों पर फैलते रहते है तो विभिन्न रसायनों का प्रयोग धूलि, द्रव या धूम्र के रूप में, परिस्थितियों के अनुसार करते है विभिन्न रसायन जो की रोगों को नष्ट करने के काम में आते है निम्लिखित है–

तांबा युक्त रसायन:– इस वर्ग में बोरडेक्स मिश्रण, बरगंडी मिश्रण, ब्लाईटोक्स एवं पेरेनोक्स आदि ।

गंधक युक्त रसायन:– इस वर्ग में जायेरम, जिनेब एवं मैनेब आदि ।

पारा युक्त रसायन:– इस वर्ग में एग्रोसन जी. एन., सेरेसन एवं ऐरेटान आदि ।

आक्सेबाईन युक्त रसायन:– इस वर्ग में वीटावैक्स , प्लान्टवैक्स आदि रसायन है ।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

गेहूँ की उत्पादकता में सुधार

सुनिता कुमारी, बसन्त कुमार भींच्छर
कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005
E-mail- basantbhu88@gmail.com

गेहूँ देश की प्रधान फसलें हैं। देश के कुल खाद्यान उत्पादन में लगभग एक तिहाई का योगदान करके गेहूँ खाद्य सुरक्षा को ठोस आहार प्रदान करता है। लगभग पूरे देश में विभिन्न कृषि जलवायु और दशाओं में गेहूँ की खेती की जाती है। पंजाब, हरियाना, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और बिहार गेहूँ का उत्पादन करने वाले प्रमुख राज्य हैं। देश में गेहूँ की खेती लगभग 29 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र पर की जा रही है। राष्ट्रीय स्तर पर औसत उत्पादकता लगभग 2938 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर दर्ज की गई है।

हरित क्रांति के पूर्व सन् 1960 के दशक में गेहूँ का वार्षिक उत्पादन लगभग 10 मिलियन टन था जबकि आज 2014–15 में 95.5 मिलियन टन उत्पादन हो रहा है। विश्व स्तर पर गेहूँ का उत्पादन करने वाले अग्रणीय देशों में भारत का दूसरा स्थान है और भारत निर्यात करने में भी सक्षम है। निरन्तर बढ़ती जनसंख्या के सन्दर्भ में खाद्य सुरक्षा को सतत् बनाये रखने के लिये गेहूँ के कुल उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि करना अनिवार्य है। आम किसानों के खेतों में गेहूँ की उत्पादकता वैज्ञानिकों द्वारा आयोजित राष्ट्रीय प्रदर्शनों की तुलना में आम तौर पर सार्थक रूप से कम होती है। क्योकि सामान्यतः किसान उन्नत वैज्ञानिकों की तकनीकों को नहीं अपनाते।

1. **बीज और बीजोपचारः** उत्तम बीज बेहतर फसल उत्पादन की नींव रखते हैं। हमेशा साफ स्वस्थ और खरपतवारों के बीजों से रहित प्रमाणिक बीजों का उपयोग करना चाहिए।
   - भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के करनाल स्थित क्षेत्रिय स्टेशन द्वारा चुनिन्दा किस्मों के गुणवत्ता पूर्ण बीजों की बिक्री की जाती है, इसका लाभ उठाना चाहिए।
   - यदि अपने खेत का बीज प्रयोग करना हो तो बुआई से पूर्व बीज का उपचार करें।
   - बुआई के लिए बीज की दर दाने का आकार, जमाव प्रतिशत, बोंने का समय और विधि तथा भूमि की दशा पर निर्भर करती है। यदि 1000 बीजों का भार 3 किलोग्राम है तो 1 हैक्टेयर के लिए लगभग 100 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है।
   - सिंचित क्षेत्रों में समय पर बुआई के लिए प्रति हैक्टेयर 100 किलोग्राम और देरी से बुआई के लिए 125 किलोग्राम बीज प्रर्याप्त होते हैं।
   - बारानी क्षेत्रों समय पर बुआई के लिए 75 किलोग्राम/हैक्टेयर बीज की आवश्यकता है।
   - उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में धान के बाद गेहूँ की बुआई देरी से होती है इसलिए इन क्षेत्रों के लिए 125 कि.ग्रा./हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है।
   - महँगें नाइट्रोजन और फॉस्फोरस की बचत के लिए संस्थानों द्वारा एजेटोबेक्टर जीवाणु टीका और फॉस्फोरस के टीके का विकास किया गया है इनके उपयोग से उपज में 10–15 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई है।
2. **बुआईः** बुआई देशी हल द्वारा कैरा या बौरा विधि से करें या फिर बुआई मशीन का उपयोग करें। उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में सिंचित दशा में गेहूँ की बुआई नवम्बर के पहले पखवाड़े में करें। उत्तर–पूर्वी भागों में मध्य नवम्बर तक बुआई की जा सकती है। देर से बुआई के लिए उत्तर–पश्चिमी मैदानों में 25 दिसम्बर तक और उत्तर–पूर्वी भागों में 15 दिसम्बर अंतिम समय सीमा है। गेहूँ की बुआई 22–23 सेंटीमीटर

की आपसी दूरी पर बनी कतारों में करनी चाहिए। और ध्यान रहे कि बीज 5 सेमी. से अधिक गहराई पर ना गिरे। सीड ड्रिल या फर्टीसीड्रील से बुआई करना लाभकारी होता है।

- संरक्षित खेती के लिए जीरो ड्रील का उपयोग करें, इससे जमीन की उर्वरा शक्ति बढत्रती है तथा डीजल एवं पानी की बचत होती है।
- फसल अवशेष को बिना साफ किये अगली फसल की बुआई के लिए रोटरी हील का उपयोग किया जा सकता है।
- आधुनिक फर्ब तकनीक में 70 सेमी में मेंड़ो पर गेहूँ को 2 या 3 कतारों में बोया जाता है इन मेंड़ो के बीच बनी नालियों के जरिए सिंचाई की जाती है। इससे 24 से 40 प्रतिशत बीज, 25 प्रतिशत नाईट्रोजन और 25 से 40 प्रतिशत पानी की बचत होती है।

3. **पोषक तत्व प्रबंधनः** अधिक अन्न उत्पादन के लिए खेत में संतुलित मात्रा में पोषक तत्वों का उपयोग आवश्यक है। इसके लिए मिट्टी की जाँच अवश्य करवायें और इसी के आधार पर वैज्ञानिक की सलाह से पोषक तत्वों का उपयोग करें। सामान्य सिफारिस के अनुसार सिंचित दशा में समय पर बुआई की गई फसल में 125 किलोग्राम नाइट्रोजन 60 किलोग्राम फॉस्फोरस और 40–60 किलोग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है। देरी से बुआई गई फसल के लिए लगभग 80 किलोग्राम नाइट्रोजन, 40 किलोग्राम फास्फोरस और 30–40 किलोग्राम पोटाश पर्याप्त होती है।

बारानी क्षेत्रों में समय से बुआई की गयी फसल में 40–50 किलोग्राम नाइट्रोजन, 20–25 किलोग्राम फॉस्फोरस, 20 किलोग्राम पोटाश देना चाहिए। सिंचित दशाओं में फास्फोरस, पोटाश फर्टी–सीड ड्रील द्वारा खेत में डालें। सिंचित दशाओं में नाइट्रोजन की बची हुई दो–तिहाई मात्रा का आधा पहली सिंचाई के बाद और बाकी आधा दूसरी सिंचाई के बाद फसल को टॉप ड्रेसिंग के रूप में दें।

4. **सिंचाई प्रबन्धनः** गेहूँ की फसल को तैयार होने के लिए पुरी आवधि में 35–40 सेमी पानी की आवश्यकता होती है। फसल की छः महत्वपूर्ण क्रांतिक अवस्थाओं में सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

- द्यत्रक या क्राउन जड़ें निकलने पर बुआई के 20–25 दिन बाद
- कल्ले निकलने के बाद बुाआई के 40–50 दिन बाद
- तनों में गाँठ पड़ने पर बुआई के 65–70 दिन बाद
- फूल आने से पहले बुआई के 80–85 दिन बाद
- दानों में दूध पड़ने पर बुआई के 110–119 दिन बाद
- दानें सख्त होने पर बुआई के 120–135 दिन बाद

खेती की मेड़बंधनी जरूर करें, जिससे बर्षा का पानी रूका रहे। खेत को ढाल के अनुसार छोटी क्यारियों में बाँटकर सिंचाई करना सुविधाजनक और अधिक लाभप्रद है। सिंचाई लगभग 6 सेमी गहरी होनी चाहिए।

5. **खरपतवार प्रबन्धनः** गेंहू की फसल में खरपतवारों का प्रकोप उत्पादकता कम करने वाला प्रमुख कारण है गेहूँ का मामा या गिल्लीडंडा गेंहू का प्रमुख खरपतवार है। इसके अलावा जंगली जई, बथुआ, जंगली पालक, कृष्णनील, हिरनखुरी आदि भी फसल को नुकसान पहुँचाते हैं। प्रारम्भिक बढ़वार के 30–50 दिनों के दौरान खरपतवारों का नियत्रंण अत्यन्त आवश्यक है। खरपतवारों के नियंत्रण के कुछ आसान और असरदार उपायः

- खरपतवारों से मुक्त बीजों का प्रयोग
- समय पर बुआई
- कतारों के बीच अधिकतम दूरी 18 सेमी.
- बुआई से पहले हल्की सिंचाई और फिर जुताई करके खरपतवारों को नष्ट करना
- शुन्य जुताई मशीन या 'फर्ब' विधि द्वारा बुआई

- सिंचाई की नालियों या मेड़ो पर खरपतवार ना जमने दें।
- बुआई के 30 से 40 दिन के अन्दर खुरपी या 'हो– द्वारा निराई– गुड़ाई
- बुआई के तीन दिन के अन्दर पेन्डिमेथिलीन के घोल का छिड़काव
- खरपतवारी नाशी रसायनों का उपयोग केवल प्रकोप की दशा में वैज्ञानिकों की सलाह के अनुसार करें। खरपतवारों का समयपंक्ति प्रबन्धन सबसे अधिक प्रभावकारी व पर्यावरण अनुकुल है।

6. **रोगों पर रोकथामः** गेंहू में रोगों का प्रकोप पैदावार को सार्थक रूप से कम कर देता है उन्नत किस्म के शुद्ध बीजों के उपयोग और बुआई के पूर्व इनके उचित उपचार से फसल पर रोगों का प्रकोप कम होता है। एक समय में रतुआ रोग से गेहू को काफी नुकसान होता था परन्तु रतुआ प्रतिरोधी किस्मों के विकास से ये समस्या काफी कम हो गई है। गेंहू का एक और रोग है कंडुआ। यदि प्रमाणित बीज को कार्बोक्सी नामक कवकनाशी से उपचारित करके बुआई की जाये तो ये रोग पनपने की संभावना नहीं होती है। हाल के वर्षो में करनाल बंट नामक रोग राष्ट्रीय समस्या के रूप में उभरा है इसके नियंत्रण के बुआई से पहले बीज को कार्बोक्सिन से उपचारित करना चाहिए।

7. **कीट नियंत्रण एवं प्रबन्धनः** गेंहू उगाने वाले क्षेत्रों में दीमक और मांहू का प्रकोप बढ़ रहा है। मांहू की संख्या प्रति पौधा 10 से अधिक होने पर कीटनाशक का छिड़काव करें। दीमक की रोकथाम के लिए खेतों के आसपास इनकी कोलोनियों को सामूहिक रूप से तोड़कर इसमें कीटनाशी डालें। बुआई के 1 से 2 दिन पहले बीजों को कीटनाशी से उपचारित करके भी दीमक के प्रकोप से बचा जा सकता है। दीमक का प्रकोप होने पर सिफारिस की गई मात्रा के अनुसार कीटनाशी का छिड़काव करें। प्रारोग मक्खी पछेती फसल पर आक्रमण करती है इससे बचने के लिए फसल को समय से बों दें। अधिक प्रकोप होने पर कीटनाशक का छिड़काव करें। गुलाबी तना बेधक का प्रकोप उन खेतों में ज्यादा होता है जहाँ धान के बाद गेंहू की फसल उगाई जाती है। इसकी रोकथाम के लिए फसल करने के बाद खेत की अच्छी तरह जुताई करें। आवश्यकता होने पर ही कीटनाशक का छिड़काव करें। गेंहू की फसल में कीट नियंत्रण के लिए समेकित कीट प्रबन्धन को अपनाया जा सकता है जिसके अन्तर्गत विभिन्न पर्यावरण हितैषी उपायों से कीटों का प्रबंधन किया जाता है।

8. **फसल की कटाई एवं उपजः** खेती के वैज्ञानिक तौर तरीके अपनाने से किसान के सामने ठीक समय पर स्वस्थ फसल तैयार हो जाती है। अधिक उपज प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि फसल की कटाई सही समय पर की जाए। आमतौर पर अप्रैल के पहले सप्ताह से मई के पहले सप्ताह तक फसल की कटाई की जाती है। जब पौधों का तना भूरे रंग का हो जाये और बालियों में कड़कपन आ जाये तो समझना चाहिए कि फसल कटाई के लिए तैयार है। छोटे खेतों में जहाँ हाथ से कटाई की जाती है, दँराती का उपयोग करना चाहिए और पौधों को जमीन से काटना चाहिए। गाह के लिए उपयुक्त प्रेसर का उपयोग किया जा सकता है बड़े खेतों में कम्बाईनर मशीन से कटाई करना उपयुक्त है। इससे श्रम एवं समय दोनों की बचत होती है ये फसल की कटाई, गट्ठक बनाने तथा गहाई का काम एक साथ देती है। इस तरह वैज्ञानिक तौर तरीके अपना कर गेंहू की फसल से सिंचित क्षेत्रों में प्रति हैक्टेयर टन उपज प्राप्त करना सम्भव है। कारानी क्षेत्रों में 2 से 2.5 टन उपज प्राप्त की जा सकती है वैज्ञानिकों का लक्ष्य ये है कि गेंहू के उत्पादन एवं उत्पादकता में सतत् विकास हो, जिससे देश में खाद्य सुरक्षा बनी रहे।

मरूमेघ
किसान ई – पत्रिका
www.marumegh.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
©2017 marumegh
ISSN:2456-2904

गन्ना की खेती– अर्थात् अधिक रोजगार का सृजन

संजय पठाड़े[1], डॉ. बिनीता देवी[2] एवं डॉ. शिशिर कुमार सिंह[3]
[1,2]अनुवाशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग [3]कृषि अर्थशास्त्र बुन्देलखण्ड़ विश्वविद्यालय,झाँसी (उ0प्र0)

"गन्ने की उत्पत्ति सर्वप्रथम ओसीनिया उत्तरी–पूर्वी भारत में हुई ।"

भारत में गन्ने की खेती प्राचीन काल से ही होती चली आ रही है । इसलिए गन्ने का जन्म स्थान भारत देश को ही बतलाया गया है । गन्ने के उत्पादन वे क्षेत्रफल में वर्ष 1979 में ब्राजील का प्रथम स्थान भारत द्वितीय स्थान उसके बाद क्यूबा तथा चीन आता है । भारत में सबसे अधिक चीनी मिल उ0प्र0 (105) एवं महाराष्ट्र (99) है । विश्व में भारत में सबसे अधिक (400) चीनी मिल है । भारत में क्षेत्रफल की दृष्टि से उ0प्र0 (52 प्रतिशत) प्रथम स्थान है । प्रति हेक्टेयर गन्ना उत्पादन में तमिलनाडु को पहला स्थान इसके बाद महाराष्ट्र, कर्नाटक आते है । भारत में चीनी उद्योग विदेशी मुद्रा कमाने के लिए एक मुख्य फसल है । जिसकी कुल चालू पूँजी का 11 प्रतिशत तथा स्थिर पूँजी का 8 प्रतिशत भाग है । जिससे कुल राष्ट्रीय आय का 23.28 प्रतिशत भाग है ।

मिठास का नाम है गन्ना :– जब हम मिठास की बात करते है । विशेषकर भोजन में मिठास की, तो हमारा ध्यान बराबर गन्ने की ओर जाता है । उससे हम अनेक रूपों में मिठास प्रदान करने वाले पदार्थ प्राप्त करते है, जैसे गुड़, राब, शक्कर, खांड, बूरा, मिश्री,चीनी इत्यादि । गुड़ में चीनी का बाहुयुल्य होता है । और इसकी मात्रा कभी कभी 90 प्रतिशत से भी अधिक तक पहुँच जाती है । इसके अतिरिक्त इसमें ग्लूकोज, फ्रुक्टोज,खनिज (चूना, पोटाश, फासफोरस आदि) भी अल्प मात्रा में रहते है ।

मृदा :– गन्ना के लिए भारी दोमट भूमि की आवश्यकता होती है ।

जलवायु :– गन्ने के सर्वोत्तम जमाव के लिये 30–35^{0}C वातावरण तापक्रम उपयुक्त है

फसल चक्र :– आदर्श फसल चक्र वह है जो कि परिवार के सदस्यों एवं क्षेत्र के श्रमिकों को रोजगार के अधिकतम अवसर प्रदान कर सके एवं अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सके । जिसके लिए उ0 प्र0 में प्रचलित कुछ आदर्श फसल चक्र निम्नलिखित है :–

(1) पश्चिमी क्षेत्र के लिए :– (i) धान–गेहूँ–गन्ना–पेडी–लोबिया (ii) धान–बरसीम–गन्ना–पेड़ी–गेहूँ

(2) मध्य क्षेत्र के लिए :– (i) धान–राई–गन्ना–पेड़ी–गेहूँ (ii) हरी खाद–आलू–गन्ना–पेड़ी–गेहूँ

(3) पूर्वी क्षेत्र के लिए :– (i) धान–लाही–गन्ना–पेड़ी–गेहूँ (ii) धान–गन्ना–पेड़ी–गेहूँ

खेत की तैयारी :– दोमट भूमि जिसमे गन्ने की खेती की जाती है जिसकी 12–15 प्रतिशत मृदा–नमी अच्छे जल जमाव के लिए होनी चाहिए नमी कम होने पर बुवाई के पहले पलेवा करके पूरा किया जा सकते है । उसके बाद मिट्टी पलटने वाले हल से एक गहरी जुताई तथा 2–3 उथली जुताइयॉ करके खेत में पाटा चला दिया जाता है । खेत में हरी खाद देने की स्थिति में खाद को सड़ने के लिए पर्याप्त (एक से डेढ़ माह का) समय देना चाहिए ।

बुवाई की विधियॉ :– गन्ने की बुवाई करने के लिए समय के अनुसार अलग–2 विधियों को अपनाया जाता है जैसे समतल विधि, कूँड विधि, टेन्च विधि,रेयूनगनस विधि ,पर्था विधि, पौध रोपण विधि,जेबलॉऊ विधि और ढलगिन विधि इत्यादि । सामान्यतः गन्ने के लिए (75–90X25–30 सेमी0) फसल अन्तराल रखा जाता है ।

बुवाई का समय :– गन्ने की बुवाई तीनो ऋतुओं में की जाती है:–

(i) वसन्त कालीन : गन्ने की बुवाई फरवरी में करते है तथा अगले वर्ष दिसम्बर–जनवरी में काटा जाता है ।

(ii) **शरद कालीन** : गन्ने की बुवाई अक्टूबर में करते है एवं अगले वर्ष नवम्बर–दिसम्बर में काटा जाता है । यह समय गन्ने की बुवाई के लिए सर्वोत्तम माना गया है इसमें 20–25 प्रतिशत उपज अधिक मिलती है जिसका मुख्य कारण है गन्ने की बढ़वार के लिए अधिक समय का मिलना एवं अंकुरण अधिक से अधिक होना ।

(iii) **वर्षा कालीन** : इसमें जून–जुलाई मे बुवाई करते है और फसल पकने तक 14–18 महीने लगते है ।

बीज दर :– 2–3 ऑख वाले 35000–40000 टुकड़े या 70 से 80 कुन्तल प्रति हेक्टेयर ।

किस्में :– **CO**–1148, CO–1158, CO–7814, CO–7717, CO–62399 इत्यादि ।

बीज उपचार :– गन्ने के बीज को हमेशा उपचारित करके बोना चाहिए जिससे कवच से बचाव हो सके जिसके लिए एगलाल तथा ऐराटान रसायनों से उपचारित करना चाहिए।

बीज की बुवाई :–

(i) खाद : गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद या जैविक खाद 200–250 क्वि0 प्रति हेक्टयर की दर से मिट्टी में बुवाई के पहले अच्छी तरह मिलाकर पाटा चलाकर कुॅड बनाना चाहिए ।

(ii) उर्वरक : गन्ने में 90–110 किलो N , 180–300 किलो P, 60–180 किलो K, तथा 30–90 किलो कैल्शियम बुवाई के पूर्व कुॅड में डालकर मिला देना चाहिए । N की मात्रा को 2–3 बार मे देना चाहिए ।

(iii) बुवाई : बीज को उपचारित कर 8–10 सेंमी0 गहरी नाली में बुवाई करके पानी दे देना चाहिए ।

(iv) सिंचाई : गन्ने का अंकुरण होते समय पर्याप्त नमी रखना अति आवश्यक होता है फिर बाद में आवश्यकता अनुसार पनी देते रहना चाहिए । गन्ने के पकने तक 10 से 12 सिंचाई की आवश्यकता होती है ।

निदाई–गुडाई :– गन्ने की बुवाई से 15–20 दिन पश्चात खरपतवार को हाथ से या रसायन (2,4–D) से नष्ट करके गुड़ाई कर देना चाहिए ।

मिट्टी चढ़ाना :– बुवाई से 30.–45 दिन पश्चात मिट्टी चढ़ा देना चाहिए ।

रोग :–

(i) रेड रॉट : यह रोग कोलेटोट्राइकम फाल्केटम कवक द्वारा होता है । जिससे फसल पर भारी नुकसान होता है । इसकी रोकथाम के लिए बीज को उपचारित करके बोना चाहिए ।

(ii) गन्ने का स्मट : यह रोग अस्टिलैगो स्टिमिनिया कवक द्वारा होता है । इसका प्रकोप अप्रैल से जुलाई तक रहता है । गन्ने में लाल धारी रोग जेन्थोमोनाज रूब्रीलिनेन्स बैक्टीरिया द्वारा होता है ।

कीट :– गुरदासपुर बोरर, रूट बोरर, टॉप बोरर, गन्ने की सफेद मक्खी आदि कीट हानि पहुॅचाते है । पाइरिल्ला गन्ने का हानिकारक कीट है जो अप्रैल–मई में तथा दोबारा अगस्त सितम्बर में दिखाई देता है ।

गन्ने को बॉधना :– गन्ने को गिरने से बचाने के लिए कई पत्तियों को मिलाकर तनों को बॉध देना चाहिए जिससे गन्ने गिरने का भय नही रहता जिससे उपज में अन्तर दिखाई देता है ।

उपज :–**(i)कटाई** : गन्ने की कटाई जब करना चाहिए जब कि गन्ने में सफेद फुल दिखाई न दे । फुल आने पर गन्ने में सबसे अधिक शर्करा पायी जाती है । तब इसकी कटाई के लिए उचित समय माना गया है ।

(ii)उपज : शरदकालीन में 800–1200 क्विंटल/हेक्टयर एवं बसन्त कालीन में 700–900 क्विंटल/हेक्टयर गन्ना प्राप्त होता है ।